सूरज
की
सोलह
किरणें

सूरज की सोलह किरणें

संपादक
डॉ. कृष्ण कुमार

ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली

प्रकाशक : ग्रंथ अकादमी, १६५९ पुराना दरियागंज, नई दिल्ली-२ (भारत)
सर्वाधिकार : सुरक्षित / संस्करण : प्रथम, २००८ / मुद्रक : नरुला प्रिंटर्स, दिल्ली
मूल्य : भारत में दो सौ रुपए, विदेश में पाँच पाउंड ISBN 81-88267-66-X

SURAJ KI SOLAH KIRANEN *poems* ed. Dr. Krishna Kumar
Published by Granth Akademi, 1659 Old Darya Ganj, New Delhi-2 (India)
Rs. 200.00 (Overseas £ 5)

सूरज की सोलह किरणें, गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय, यू.के. के सभी पुराने एवं वर्तमान सदस्यों को समर्पित है, जिन्होंने समुदाय की सफलता में अपना योगदान दिया है। यह संग्रह उन सबको भी समर्पित है, जो भाषायी समन्वय एवं भारतीयों की सार्वभौमिक एकता और अखंडता की संकल्पना में विश्वास रखते हैं। विशेषतः यह संकलन विख्यात गीतकार डॉ. कुँअर बेचैन जी को भी समर्पित है, जिन्होंने इसमें सम्मिलित कविताओं को निखारा है।

एक नया सवेरा लाती हुई 'सूरज की सोलह किरणें'

—डॉ. कुँअर बेचैन

सन् पचपन से अर्थात् अपने बचपन से ही कविता लिखते-लिखते मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि कविताओं का प्रत्येक शब्द कवि के भाव या विचारों के निराकार रूप का साकार रूप है। जो कुछ हम सोच रहे होते हैं, उसे ही हम शब्दों का रूप देते हैं, इसलिए कविता के शब्द एक प्रकार से भाव और विचारों का अवतार-रूप ही हैं। एक और बात भी जो मेरे चित्त में सदैव बसी रहती है और वह यह है कि मैं 'दीखने' के 'पीछे देखने' को कविता मानता हूँ। जो दृश्यमान है उसके पीछे जो कुछ दिखाई दे रहा है, वास्तव में कविता तो वह है। हमें यहाँ इन दो शब्दों को अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिए, एक शब्द है 'देखना' और दूसरा है—'दर्शन'। 'देखना' तो उसका है जो सामने है और 'दर्शन' उसका होता है जो सामने नहीं है, जो अदृश्य है और जिसे ये बाह्य चक्षु नहीं देख पाते। उसके लिए अंतर्चक्षुओं की आवश्यकता है। 'देखना' चर्म-चक्षुओं का विषय है और 'दर्शन' अंतर्चक्षुओं का। इस बात को यूँ समझा जा सकता है कि जैसे मंदिर में हम 'देखते' तो पत्थर की मूर्तियों को हैं किंतु 'दर्शन' ईश्वर के कर रहे होते हैं। मूर्तियाँ दिखाई देती हैं, ईश्वर नहीं। मूर्तियाँ साकार और दृश्यमान हैं जबकि ईश्वर निराकार और अदृश्य। निराकार को तो एहसास के धरातल पर ही समझा जा सकता है। कविता भी इसी एहसास का नाम है जो शब्दों की

मूर्तियों में आकार ग्रहण करता है। अर्थात् 'देखने' को 'दर्शन' बनाने का काम ही कवि-कर्म है।

जब बात चली ही है तो मैं इन दो शब्दों का भी उल्लेख करना चाहूँगा। एक शब्द है 'क्या?' और दूसरा है 'क्यों?' सामान्य व्यक्ति 'क्या' पर ही अटके रहते हैं और इस 'क्या' तक पहुँचकर वहीं से वापस लौट आते हैं, जबकि रचनाकार और कलाकार 'क्या' तक पहुँचने के बाद 'क्यों' तक भी पहुँचने की कोशिश करते हैं। 'क्या' एक प्रकार से परिणाम है जब कि 'क्यों' में एक खोज है, एक कारण है। रचनाकार 'क्या' से 'क्यों' तक बिछी पगडंडी पर यात्रा करता है और उस पर चलकर कुछ ढूँढ़ता चलता है। कविता 'क्या' के बिंदु से 'क्यों' के बिंदु तक खिंची लकीर पर चलनेवाले शब्दों का सार्थक प्रचलन ही तो है। इस बात को एक इस उदाहरण से भी समझा जा सकता है। जैसे कोई वेश्या है तो उसे देखकर लोग यही कहेंगे कि वह तवायफ़ है। दुनिया इस 'क्या' पर ही अटकी रहेगी किंतु रचनाकार इस बात पर अधिक ध्यान देगा कि वह तवायफ़ 'क्यों' बनी? यह 'क्यों' ही 'क्या' से पीछे लौटना है और यह 'लौटना' ही वास्तव में 'क्या' से आगे निकल जाने की प्रक्रिया है। कविता इसी 'क्यों' के साथ की गई ऐसी शब्द-यात्रा है जो 'शव' की नहीं वरन् 'शिव' की खोज के उद्देश्य से की गई है।

अंत में एक और बात करते हुए मैं इस संकलन की रचनाओं की ओर मुड़ूँगा। यह अंतिम बात मेरी दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण है। हम सभी जानते हैं कि कवियों-साहित्यकारों के लिए 'रचनाकार' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। मैं इसी रचनाकार शब्द को सबसे ऊँचा स्थान देता हूँ। 'रचनाकार' शब्द हमें निरंतर यह आभास देता रहता है कि हम केवल 'लिख' ही नहीं रहे, 'रचना' भी कर रहे हैं। कवि को संभवत: इसी लिए ब्रह्मा कहा गया है कि वह भी ब्रह्मा की तरह एक नए संसार की रचना करता है। 'रचना' में 'निर्माण' है, 'विध्वंस' नहीं। इसलिए 'रचनाकार' शब्द में केवल 'रचना' ही नहीं, रचनाधर्मिता भी आकर जुड़ जाती है। हमें हमेशा यह परखते रहना चाहिए कि हमारी कविता 'रचना' के पायदान पर खड़ी है या नहीं। रचना के पायदान का अर्थ यही है कि हमारे द्वारा लिखी हुई कोई भी कृति समाज

में जाकर समाज को निर्माण की ओर उन्मुख करने वाली होनी चाहिए। बनाने को तो बम भी बनाया जाता है और वह भी एक प्रकार से बम बनाने वाले की कृति ही है किंतु जब यह बम किसी बाज़ार में, किसी स्कूल में, किसी मेले में या फिर निरीह इंसानों पर फेंका जाता है तो वह आतंकवादी कार्यवाही कहलाता है। यह बम विध्वंसकारी है, इसलिए यह कृति होकर भी 'रचना' नहीं है। साहित्य और कला के संदर्भ में 'रचनाधर्मिता' ही किसी भी कृति की पहली शर्त है। साहित्य के संदर्भ में 'सत्यं शिवं सुंदरम्' की कल्पना इसीलिए की गई है कि वह निर्माणात्मक और रचनात्मक हो। वह विध्वंसकारक और विश्व के लिए अहितकारी न बने।

☐

सन् २००७ के अक्तूबर मास में जब मैं यू.के. की 'गीतांजलि' संस्था द्वारा आमंत्रित किया गया और नॉटिंघम में होनेवाले 'कविता-वर्कशॉप में शामिल हुआ तो वहाँ के अनेक कवि-कवयित्रियों की कविताएँ सुनने का अवसर मिला। मुझे लगा कि विदेश में रहकर भी हिंदी कविता तथा अन्य भारतीय भाषाओं के रचनाकारों में गहरी रचनात्मक क्षमताएँ हैं और जो विश्व-पटल पर आनी चाहिए। जब इस संस्था के संस्थापक डॉ. कृष्ण कुमार जी ने संस्था के सदस्यों की कविताओं के संकलन की बात कही तो मुझे उनका यह विचार बहुत ही अच्छा और उपयोगी लगा। क्योंकि इस प्रकार के समवेत संकलन रचनाकारों के लिए ऐसा मंच बन जाते हैं जिसके माध्यम से वे अपनी भावनाओं और विचारों को लोगों तक सरलता से पहुँचा सकने में सफल होते हैं और आगे लिखने की प्रेरणा भी पाते हैं। दूसरी ओर पाठकों को भी एक ही स्थान पर, एक ही ज़िल्द में अनेक रचनाकारों की रचनाओं को पढ़ने का सुअवसर मिल जाता है। मेरी स्वयं की प्रारंभिक रचनाएँ समवेत संकलन में ही छपीं। सन् १९६१ में मुरादाबाद जिले के कवियों की दो-दो, तीन-तीन कविताओं का संकलन 'तीर और तरंग' नाम से डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल के संपादकत्व में प्रकाशित हुआ था, जिसमें मेरे भी गीत थे। उसी संकलन के माध्यम से मैं पाठकों के बीच पहुँचा और इन पाठकों की प्रेरणा से ही अब २७ संग्रहों की रचनाओं तक आ पहुँचा हूँ।

☐

चलिए अब इस संकलन के पन्ने खोलते हैं और रचनाओं का आनंद लेते हैं—

…इन दिनों भारत तथा भारत से बाहर के अनेक देशों में हिंदी, उर्दू तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साथ-साथ अनेक अन्य भाषाओं में भी ग़ज़लें कही जा रही हैं। ग़ज़ल विधा में यह ख़ूबी है कि उसके प्रत्येक शेर में, अर्थात् दो पंक्तियों में, पूरी बात प्रभावशाली ढंग से कही जा सकती है, ठीक ऐसे ही जैसे हिंदी के बहुत प्राचीन तथा प्रमुख छंद 'दोहा' में यह विशेषता है। 'सूरज की सोलह किरणें' काव्य-संकलन के पहले कवि-शायर जनाब **परवेज़ मुज़फ़्फ़र** साहब हैं, जिन्होंने अपनी पाँच ग़ज़लों के द्वारा इस संकलन को एक अलग और अनोखी छवि प्रदान की है। उनकी ग़ज़लें साफ़-सुथरी, छंद की दृष्टि से दोषमुक्त, प्रभावशाली, उद्धृत करने योग्य एवं सोच तथा फ़िक्र से जुड़ी ग़ज़लें हैं। उनकी ग़ज़लों में घुटन से बाहर आने की छटपटाहट है। केवल छटपटाहट ही नहीं, घुटन से बाहर आने का संकल्प और क्रियाशीलता की प्रेरणा भी है। ऐसा है, तब ही तो वे सहज भाव से कह उठते हैं—

'दम घुट जाएगा क़ैदी
अंदर रोशनदान बना'

यह रोशनदान कोई बाहरी रोशनदान हो, केवल यह बात नहीं है, वरन् इस शेर का 'अंदर' शब्द उस ओर भी इशारा कर रहा है जो उस रूह की छटपटाहट को बतलाता है जो भीतर की रोशनी, यानी रूहानी रोशनी के लिए तत्पर है।…और यह कार्य शायद तब ही संभव हो सकता है जब 'ख़ुशबू के दीवान' बनाए जाएँ और स्वयं को 'फूलों की पहचान' वाला बनाया जाए। यह तो सर्वविदित है ही कि मौत प्रत्येक व्यक्ति को कभी-न-कभी तो 'धर ही लेगी', इसलिए उसे 'जीने का सामान' भी बनाते रहना चाहिए। कौन नहीं जानता कि 'परहित' ही वह कार्य है जिसके कारण व्यक्ति मरने के बाद भी लोगों की यादों में जीवित रहता है। भाई परवेज़ मुज़फ़्फ़र उसी 'परहित' के भाव को 'जीने का सामान' कहकर व्याख्यायित करते हैं।

परवेज़ की शाइरी में अनेक भावानुभूतियाँ हैं जो अलग-अलग लहजे में नज़्म हुई हैं। तब ही तो वे गरदन के पास तलवार होते हुए भी यह निष्कर्ष

निकालते हैं—

'बहुत क़रीब है तलवार उसकी गरदन से
वो अपने दोस्त को सुलतान करना चाहता है'

···और यही नहीं वरन् एक छोटे से दीपक के हौसले को रेखांकित करते हुए यह भी कहते हैं—

'मिला चुका है दीया आँख चढ़ते सूरज से
अब आँधियों को परेशान करना चाहता है'

वे ये भी जानते हैं कि अक्सर व्यक्ति का अपना साया ही उसके वजूद का, उसके अस्तित्व का नुकसान करने की कोशिश में लगा रहता है। ···और ऐसे में यह भी स्थिति कभी-कभी आ जाती हे कि कहीं अपनों के अपनत्व पर कोई धब्बा न लग जाए इसलिए—

'ख़ंजर खाने पड़ते हैं
घाव छुपाने पड़ते हैं'

जैसा कि मैंने पहले भी कहा है कि भाई परवेज़ मुज़फ़्फ़र की शाइरी फ़िक्र और सोच की शाइरी है और इससे ही उनकी पहचान बनी है। वे बड़ी ही सरलता से अपनी सोच और फ़िक्र को शाइरी बना देते हैं। यही नहीं, वरन् वे ऐसे-ऐसे क़ाफ़िये तथा रदीफ़ ढूँढ़ते हैं जो एक ओर उनकी काव्य-प्रतिभा की चमक को दरशाते हैं और दूसरी ओर उनकी सोच को अभिव्यक्त करने के सशक्त माध्यम भी बनते हैं। उदाहरण के लिए इस संकलन में संकलित हम उनकी इस ग़ज़ल को ही लें—

'ज़ोर लगाकर हय्या रे।
रेती में है नय्या रे।
बापू हो या माता हो
सबसे बड़ा रुपय्या रे।
इतनी नदियाँ इतने खेत
भूखी भारत मय्या रे।
तिल-तिल काटी जाएगी
बाबुल तेरी गय्या रे।'

इस ग़ज़ल में जिन क़ाफ़ियों—'हय्या', 'नय्या', 'रुपय्या', 'मय्या' आदि का प्रयोग किया गया है, ऐसे क़ाफ़िए सामान्यतः उर्दू ग़ज़ल की

रिवायत में नहीं हैं। किंतु परवेज़ जी को मालूम है कि वे जो कुछ कहना चाहते हैं वह इन्हीं क़ाफ़ियों में पूरी तरह कहा जा सकेगा। 'ज़ोर लगाकर हय्या रे' यह जुम्ला मेहनतकश मज़दूरों के होंठों पर रहता है और यह सच है कि यदि अपने देश की नाव को मुफ़लिसी के रेगिस्तान से बाहर निकालना है तो भरपूर परिश्रम की आवश्यकता है। जब पसीने की बूँदें नदिया बनेंगी तब ही देश की नाव पार हो सकेगी। परवेज़ की शाइरी आज के बदलते जीवन-मूल्यों पर भी कटाक्ष करती है और कहती है कि आज के समय में नज़दीकी रिश्तों को दरकिनार कर दिया जाता है और केवल पैसे को महत्त्व दिया जाता है। संपूर्ण व्यवस्था और राजनीतिज्ञों पर चुपके से चोट करते हुए तब ही तो वे यह कहते हैं—'**इतनी नदियाँ इतने खेत/भूखी भारत मैया रे।**' क्योंकि वे जानते हैं कि देश का धन आज के तथाकथित नेताओं के पेट में पहुँच जाता है।

इसी ग़ज़ल का सबसे मार्मिक शेर है—'**तिल-तिल काटी जाएगी/ बाबुल तेरी गय्या रे।**' सचमुच आज के समाज में, जो काफ़ी प्रगतिशील कहा जा रहा है, उसमें भी नारी की स्थिति बड़ी ही शोचनीय है। वह विवाह के बाद बड़ी आशा और विश्वास के साथ पराए घर में, पराए घर को अपना बनाने के लिए जाती है किंतु वहाँ भी वह अक्सर सताई ही जाती है। पल-पल उसे दु:खी किया जाता है। इन दिनों दहेज के दानव ने तो उसे कहीं का न रखा। सचमुच वह 'तिल-तिल कटने वाली गय्या, ही है इन दिनों। 'गय्या' वैसे भी भोलेपन और सरलता का प्रतीक है। जो सीधी-सादी हैं, वे ही बड़े कष्ट भोग रही हैं। परवेज़ जी की संवेदनात्मक पकड़ और उनके काव्य-कौशल दोनों के ही दर्शन इस शेर में हो जाते हैं।

ग़ज़ल के वे शेर बड़े और अच्छे माने जाते हैं जो जुबान के शेर होते हैं तथा जो समय-समय पर याद आएँ। वे उद्धृत किए जाने के योग्य भी हों। परवेज़ जी के अनेक शेर उद्धृत करने योग्य हैं, जैसे—

'दुश्मन बन जाते हैं ख़ुद
दोस्त बनाने पड़ते हैं
अक्सर गीत मुहब्बत के
रोकर गाने पड़ते हैं'

अंत में परवेज़ साहब की इन ग़ज़लों को देखकर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि इनकी शाइरी में सार्थक प्रतीक, चित्र बनाते हुए बिंब और भाषा की पकड़ तो है ही, चिंतन और भाव के स्तर पर भी उनकी शाइरी बड़ी ज़रूरी और महत्त्वपूर्ण है।

□

इस संकलन की दूसरी सूर्य किरण हैं **सुश्री मीनू अग्रवाल।** मीनू अधिकतर 'फ्री-वर्स' में लिखती हैं। फ्री-वर्स की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें छंद का बंधन न होने के कारण अपनी बात को पूरी तरह कहने का अवसर मिलता है। इस कवयित्री ने अपनी कविताओं में अपने विचारों को जिस प्रकार अभिव्यक्त किया है, वह कविता का सहज-सरल रूप है और उसमें एक ओर दार्शनिकता और अध्यात्म के दर्शन होते हैं तो दूसरी ओर मनोविज्ञान के। **'बदल सकते हो अपना प्रारब्ध'** और **'माया ठगिनी'** शीर्षक कविताओं में धर्मग्रंथों में कही हुई बातों और आज के वैज्ञानिक युग की मान्यताओं का द्वंद्व है। तब ही तो वे यह कहते हुए कि **''बाइबिल में कहा गया है, 'एज यू सो, सो यू शैल रीप' '',** हमारे वेद कहते हैं— **'पुराने कर्मों का फल तो मिलेगा ही',** यह भी कह उठती हैं—

'मानती हूँ बग़ैर 'टाइम मशीन' के
बदले नहीं जा सकते बीते हुए दिन
परंतु प्रारब्ध पर पूर्ण विश्वास
क्या निराशावाद नहीं है?'

मीनू अग्रवाल की मान्यता है कि **'उस परमपिता की यह सृष्टि तो है/कंप्यूटर के गेम की सी.डी. की तरह/...हर इंसान के लिए हैं सब संभावनाएँ/कोई नियमित नतीजा नहीं है/हम बार-बार गिरकर भी खेल सकते हैं/आगे बढ़ सकते हैं।'**

'माया ठगिनी' शीर्षक कविता में भी एक इसी तथ्य की ओर इंगित किया गया है कि मनुष्य अपने ही द्वारा बुने हुए सपनों के जाल में फँसता रहता है। एक स्वप्न पूर्ण होता है तो हम दूसरे स्वप्न में उलझ जाते हैं। सांसारिक व्यक्ति की यही नियति है।

'एक कहानी पढ़ी थी' कविता में मीनू जी ने मानव-मनोविज्ञान के उस पहलू की ओर इशारा किया है जब वह आत्म-विश्लेषण न करते हुए

दूसरों की ग़लतियों को ही तलाश करता रहता है। वे कहती हैं—

'एक कहानी पढ़ी थी
कि इस इंसान को दो झोले दिए गए
एक झोले में थीं उसकी अपनी ग़लतियाँ
और दूसरे में उसके पड़ोसी की।
कहा गया उससे कि वह देखे
केवल अपनी ही ग़लतियों वाला झोला
परंतु उसने झाँका सिर्फ़ पड़ोसी के ही झोले में।
हम सब यही करते हैं।
सिर्फ़ यही नहीं
देखकर दूसरों की कमियाँ हँसते हैं, ख़ुश होते हैं।'

कवयित्री इस सबके पीछे व्यक्ति के ईर्ष्या-भाव को मानती है। यह ईर्ष्या-भाव ही है जिसके कारण '**हम दूसरे केले के पत्तों के लिए/बन गए हैं बेर की झाड़ियाँ/'''और उनके मन को चीरते हैं।'''**'

इसके साथ ही मीनू यह मानती हैं कि हमारा 'अहं' भी सबसे बड़ा कारण बन जाता है दूसरों को दु:ख पहुँचाने का। वे कहती हैं—

'(हम) इतने डूबे होते हैं अपने अहं में
कि हमें कोई पछतावा है ही नहीं।'

इस प्रकार मीनू अग्रवाल की कविताएँ हमें आत्म-विश्लेषण करने की ओर प्रेरित करती हैं और मनुष्य को मनुष्य बने रहने की प्रेरणा देती हैं। उनकी कविताओं की भाषा में शुद्ध हिंदी के शब्द अर्थात् उन तत्सम शब्दों का बाहुल्य है जो विषय को प्रतिपादित करने के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं।

□

सुश्री चंचल जैन इस काव्य-संकलन के सूर्य की ऐसी तीसरी किरण हैं जो एक क़ैदी के प्रति भी सहानुभूति रखती हैं और रात के सन्नाटे में भी उसके उस रूप को देख लेती हैं जो सूनेपन और खोखलेपन से भरा है और यह कहकर एक प्रश्न छोड़ जाती हैं—

'टिक-टिक करती घड़ी की तरह
टिप-टिप करती बूँदों की तरह

जेल की सलाख़ों के पीछे पड़े
इस बदक़िस्मत क़ैदी की ज़िंदगी
क्या यूँ ही बर्बाद हो जाएगी
क्या यूँ ही ख़त्म हो जाएगी
इस रात के सन्नाटे में।'

'**मंजिल किधर है**' कविता में कवयित्री ने हक़ीक़त को ख़्वाब से कहीं अधिक भयानक बताया है। वह कहती हैं—

'ख़्वाबों की मंज़िल/हक़ीक़त नहीं है।
हक़ीक़त की मंज़िल/भयानक बहुत है।'

सचमुच स्वप्न तो सुहाने होते हैं किंतु जब हक़ीक़त सामने आती है तो वे टूटते जाते हैं और इस टूटन का दर्द केवल वही समझ पाता है जिसने इस टूटन को झेला हो।

'**पत्ते**' कविता में 'पत्ते' को प्रतीक बनाकर चंचल जैन ने जीवन के विविध रूपों और आयामों के दर्शन कराए हैं।···और अंत में यह भी कहा है—

'मर तो गए हैं/जला दो ये पत्ते
या धरती को खोदो/दबा दो ये पत्ते।'

कहा जाता है कि जीवन 'कहने' और 'सहने' के बीच की अंतर्यात्रा है। '**मूक वाणी**' कविता में इसी 'सहने' की व्यथा का वर्णन है—

'मूक वाणी के वचन मैं
सोचकर भी कह न पाई
मौन पीड़ा की व्यथा मैं
सहती रही, पर कह न पाई'

'**आबू पर्वत पर सूर्यास्त**' कविता में कवयित्री का प्रकृति के प्रति प्रेम दिखाई देता है। सच है कि कवि के हृदय में जब तक प्रकृति हिलोर बनकर नहीं उठती तब तक सच्ची कविता का जन्म नहीं होता। चंचल जैन की इस कविता में सूर्यास्त का सुंदर सटीक तथा सजीव चित्रण है, जो चित्रात्मकता के साथ-साथ बिंब भी बनाता चलता है। वे कहती हैं—

'···कैसे सूर्य देवता का

आग के अंगारे जैसा गोल-गोल चेहरा
धीरे-धीरे नीचे/गहरी वादियों में
छिप जाता है।'…

इस प्रकार चंचल जैन की कविताएँ जहाँ एक ओर प्रकृति की विभिन्न छटाओं को प्रस्तुत करने में सफल हैं, वहीं प्रकृति को प्रतीक-रूप में प्रस्तुत करते हुए उसके अनेक प्रतीकार्थ, जो जीवन से जुड़े हैं, को भी बड़ी ही कुशलता से प्रस्तुत कर देती हैं। वे संवेदनशील कवयित्री हैं, इसलिए उनकी कविताओं के शब्द संवेदना के अमर रस से भरेपूरे हैं।

□

अजय त्रिपाठी इस संकलन की एक ऐसी किरण हैं जो भाई परवेज़ मुज़फ़्फ़र की तरह ग़ज़ल विधा को लेकर काग़ज़ पर उतरी है। उनकी चार ग़ज़लें 'चौतरफा' वार करती हैं। उनकी ग़ज़लों में जो अशआर हैं उनकी चमक देखते ही बनती है। वे अनुभव की गहराई और सोच की बुलंदी दोनों को ही स्वयं में समाए हुए हैं। वे जानते हैं कि जब घटनाओं के क्रम बदलने लगते हैं तो चुपके-चुपके जीवन के मौसम भी उन्हीं के अनुसार बदलने लग जाते हैं और कभी-कभी तो ऐसा भी हो जाता है कि दु:ख के बाद सुख का क्रम आने के बजाय दु:ख का ही क्रम चलता रहता है और तब ऐसा लगता है—

'ऐसे दौर में आ बैठे हैं
ज़ख़्म भी बदले, मरहम बदला'

सचमुच आज के दु:ख पहले जैसे दु:खों की तरह नहीं हैं। अपना नया स्वरूप लेकर आते हैं और इसी कारण उनका निदान भी उसी के अनुसार नए रूप में आता है। ज़ख़्म बदलते हैं तो मरहम भी बदलेगा ही। आज के दौर ने व्यक्ति को अपने शिकंजे में इतना जकड़ लिया है कि न तो हम हम रहे और न हमदम पहले जैसा हमदम—

'बदली अपनी दुनिया सारी
हम भी बदले, हमदम बदला।'

अजय त्रिपाठी की इस संकलन में जो दूसरी ग़ज़ल है वह गीत जैसी निरंतरता (Continuity) को लिए हुए है। हर शेर एक-दूसरे से संबद्ध सा नजर आता

है। व्यक्ति कितनी ही ख़ूबियों को स्वयं में समाहित रखता है। बाहर-बाहर हँसनेवाला व्यक्ति भीतर कितने दु:ख, कितने आँसू और कितनी आहें छुपाए रहता है—भला यह कौन जान पाता है। तभी तो कवि अपनी यह बात इस प्रकार कहता है—

'रोता था भीतर भीतर
सबको था भ्रम, हँसता था।'

अपनी तीसरी ग़ज़ल में वे अनेक नसीहतें देते दिखाई देते हैं। भले ही चाहे वह '**दिल के दरिया में बह जाने**' या '**सबको झूठे ख़्वाब दिखाने वाली बात हो।**' कवि ने अपने युग की राजनीति पर दृष्टि डाली तो उसे वहाँ भी बहुत कुछ ऐसा मिला जो उसे ठीक नहीं लगा। किंतु सबसे ज़्यादा उसने इसी बात को रेखांकित किया—

'वैसे तो सबकुछ चलता है दुनिया में
राजनीति में धर्म का आना ठीक नहीं।'

कवि का प्रमुख धर्म होता है जीवन-मूल्यों की स्थापना।…और 'परहित सरिस धरम नहिं भाई' की परिकल्पना से बड़ी कोई कल्पना नहीं। यही कारण है कि अजय त्रिपाठी की अंतिम ग़ज़ल के कई अशआर इसी भाव को व्यक्त करते हैं—

ग़ैरों के ग़म की खातिर तू
अपनी कुछ ख़ुशियाँ खोया कर
नफ़रत बोते थक जाएगा
बीज प्यार के भी बोया कर

इस प्रकार अजय त्रिपाठी एक ऐसे ही शायर हैं जिन्होंने अपनी ग़ज़लों को एहसास की ज़मीन पर उतारा है और जो साफ़-सुथरे शेर कहकर अपनी अलग जगह बनाने में लगे हैं।

□

सुश्री विभा केल इस संकलन की पाँचवीं कवयित्री हैं। इनकी पाँच कविताएँ—'अहिल्या', 'साक्षी', 'गर्वित पराजिता', 'फ़ुरसत' और 'उसी तरह' इस संग्रह में संकलित हैं। 'अहिल्या' कविता में नारी के उस गुण,

जिसे ममत्व कहते हैं, को उच्वासन देते हुए यह भी कहा गया है कि शायद नारी की यह तरलता ही उसके कष्टों का कारण है। शायद उसकी कोमलता ही उसके शोषण की ज़िम्मेदार है। उसे लगता है जैसे उसकी पाषाणता ही उसे अनेक जुल्मों से बचा लेती। यही कारण है कि वह बड़े ऊँचे स्वर में कह बैठती है—

'सदियों पहले
पाषाण-अहिल्या को दिया गया था पुनः स्त्रीत्व
क्या इसलिए
कि फिर कोई इंद्र ललचाए
या फिर कोई गौतम उसे ठुकराए
या अनधिकृत ग्लानि से ग्रस्त
भूस्खलन की धूलि-सी मिट जाए?'

'साक्षी' कविता में भी पहले एक उपालंभ, एक उलाहना सा लगता है जो अपने प्रिय के प्रति है। किंतु गोपिकाओं के प्रेम की तरह विभा केल भी अनेक दु:खों को सहने को तैयार हैं। यदि प्रिय उनके सम्मुख इस सबके साक्षी हों वे सारे विकल्पों को झेलने के लिए तैयार हैं—**'विकल्प के क्षण झेल पाई इसलिए नहीं कि संज्ञाविहीन था स्वाभिमान पर, सह पाई शायद इसलिए कि तुम साक्षी थे।'**

'गर्वित पराजिता' कविता में भी उन्होंने दीपक की जलती हुई बाती के प्रतीक द्वारा अपने गौरव को सुरक्षित रखा है। वह क्षणिक सम्मान पाने के बजाय 'गर्वित पराजिता' होने का सुख पाना चाहता है, फिर चाहे निरंतर जलना ही क्यों न पड़े—

'पर हाय! बाती का गर्व
मंदिर से पावन भाव बिना
जल-जलकर मर जाना चाहा!
पाकर क्षणिक सम्मान
न हो पराजित गर्व मेरा
इसीलिए तो
शाश्वत जल रही गर्वित पराजिता।'

'**फ़ुरसत**' कविता में 'कर्त्तव्य-बोध' के साथ-साथ कुछ स्वप्नों को सजाने की बात कही गई है। प्रारंभ में प्रत्येक व्यक्ति अपने अनेक कर्तव्यों को पूर्ण करने में अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा लगा देता है। किंतु कर्तव्य जब पूरे हो जाएँ, जब थोड़ी फ़ुरसत मिल जाए तो नए-नए सपनों को भी आवाज़ लगानी चाहिए। 'फ़ुरसत' कविता छंदबद्ध कविता है, जिसमें लय है, तान है और है सुंदर प्रवाह। वे कहती हैं—

'अब मिली है फ़ुरसत फ़र्ज़ों से, आओ ख़्वाबों को आवाज़ तो दें
अब पर भी हैं, परवाज़ भी है, कहीं धुँधला-सा इक ख़्वाब भी है
चलो हटाएँ वक़्त का कोहरा, इक-दूजे को मन का राज़ तो दें
अब मिली है फ़ुरसत फ़र्ज़ों से, आओ ख़्वाबों को आवाज़ तो दें'

'**तुम्हारे बिना भी**' कविता बड़ी संवेदनात्मक, गहरी और इस तथ्य की ओर इंगित करती है कि यूँ तो किसी के बिना भी सबकुछ अपनी गति से चलता ही रहता है किंतु किसी अपने के बिना जीवन अपूर्ण-सा ही लगता है। तब ही तो वे कहती हैं—

'पर, एक-दूजे का जीवन ऐसी इकाई है
जो कभी किसी तौर भी भर नहीं पाती
हाँ, ज़िंदगी गुजरती जा रही है तुम्हारे बिना भी।'

□

सुश्री डॉ. वंदना मुकेश इस संकलन की एक ऐसी कवयित्री हैं जो संवेदना के धरातल पर किसी स्मृति-लोक में खो जाती है और ये स्मृतियाँ सुखद अनुभूतियों के झूले में उन्हें झुलाती रहती हैं। उनकी पहली कविता '**चिड़िया**' शीर्षक से है। इसी चिड़िया में, जो उनके आँगन में फुदकती हैं, उन्हें अपना बचपन याद आ जाता है। उन्हें याद आ जाते हैं '**आँगन के कोने में पूजा करते बाबा**', '**माँ के हाथों सिंकी चूल्हे की वे रोटियाँ' जिसकी महक से आँगन भर जाता था, जीजी का दौड़ना, भैया का दौड़ना पकड़ना**' सब याद आ जाता है। सचमुच मानव के पास उसका अतीत और वह भी अगर बचपन हो तो बड़ा ही सम्मोहित करता है और इसी सम्मोहन के तहत डॉ. वंदना मुकेश चिड़िया के आँगन में उतरते ही ऐसा महसूस

करती हैं—

'ऐसा लगता है मेरे बचपन का घर
मेरे आँगन में उतर आया है···
उतर आया हे मेरे आँगन में।'

डॉ. वंदना किसी भी चीज़ को बड़ी गहराई से देखती हैं और उसमें जीवन के अनुभवों को ढूँढ़ती हैं। उन्होंने '**ठूँठ**' को देखा तो यह भी देखा कि वृक्ष के 'ठूँठ' बनने की दशा में पत्ते उससे स्वयं ही अलग होकर बिछुड़ जाते हैं। कवयित्री ने इसी प्रतीक के द्वारा इस रहस्य को भी ढूँढ़ लिया कि यदि जीवन में प्रेम की हरियाली न रहे, प्रेम का रस न रहे तो जीवन भी 'ठूँठ' ही तरह ही हो जाता है और जीवन में शुष्कता आने पर सगे-संबंधी, मित्र आदि सभी साथ छोड़ जाते हैं।

मैंने प्रारंभ में ही कविता की संरचना के बारे में बात करते हुए यह कहा है कि वस्तुओं को 'देखने' के पीछे छुपी हुई किसी बात या तथ्य के 'दर्शन' करने का नाम ही कविता है। डॉ. वंदना मुकेश 'देखने' और 'दर्शन' करने के अंतर को जानती और समझती हैं। इसीलिए उन्होंने चीज़ों में से ही कविता को ढूँढ़ लिया है।

'**मेरे अपने**' कविता में उनकी व्यंग्य-क्षमता का परिचय मिलता है। सामान्यत: अपने लोग ही बनावटी मुस्कान को लेकर मिलते हैं। न जाने अपनों का सहज प्रेम कहाँ खो गया है जबकि हर कोई इसी सहज प्रेम की खोज में निकला हुआ है।

'**हवा**' कविता में डॉ. वंदना मुकेश ने नारी-स्वातंत्र्य के साथ-साथ व्यक्ति की स्वतंत्रता की बात भी कही है। हम सभी किसी-न-किसी विवशता के अधीन हैं। इसलिए परतंत्र हैं। किंतु यदि हम हवा बन जाते तो—

'देह, घर, परिवार, समाज, गाँव, शहर
कभी भी, किसी का, बरपता न कहर'

···और फिर इंसानी दायरों अर्थात् इंसान द्वारा बनाई गई अनेक रुकावटों को पार करके अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व बना लेते।

डॉ. वंदना मुकेश, लगता है इस बात को अच्छी प्रकार समझ गई हैं कि वे लोग जो अपने देश की धरती को छोड़कर दूसरी जगह आ बसते हैं,

वे लाख चाहने पर भी वैसे नहीं रह पाते, उस संस्कृति को पूरी तरह सुरक्षित नहीं रख पाते जिसे वे लेकर आए थे। उसमें बदलाव आ ही जाता है।···और तब उनकी अपनी पहचान ही खो जाती है। '**पीड़ा**' कविता में वंदना ने 'बरगद' के प्रतीक द्वारा इसी बात को रेखांकित करते हुए कहा है—

'पुराने बरगद में भी/इक नई चाह पैदा हुई
तब नई पौध जड़ सहित नई जगह रोपी गई
शाखाओं का रूप बदला/चाल बदली/रंग बदला
और फिर/नस्ल ही बदल गई
अफसोस/अब न वे बरगद की संतान हैं
न ही उनकी अपनी कोई पहचान है।'

इसी बात को वंदना मुकेश ने '**यह बात और है**' कविता में आगे बढ़ाया है। वे उन लोगों पर व्यंग्य करते हुए, जो अपनी संस्कृति छोड़कर दूसरे देश में आ बसे हैं, कहती हैं कि अधिकतर लोग धन कमाने और उसे लुटाने में लग जाते हैं और भूल जाते हैं 'पिता की छड़ी' और 'माँ की ऐनक' का लाना, जबकि अपने पिता की ज़ायदाद में अपना हक़ माँगना नहीं भूलते। वे ऐसे लोगों पर व्यंग्य करते हुए कहती हैं—

'वीकेंड पर उड़ाते, कमाते जो पाउंड में
भूल जाते आइडेंडिटी अपनी, ह्विस्की के राउंड में···
···यह बात ओर है कि न बने छड़ी पिता की
न ही माँ की ऐनक।'
···संस्कृति-प्रेम का अनूठा जतन
नए समाज का यही है चलन।'

इस प्रकार डॉ. वंदना मुकेश की कविताएँ सार्थक प्रश्नों को उठाने वाली ऐसी कविताएँ हैं जो कहीं-न-कहीं पाठक को भीतर तक झकझोर देती हैं।

□

इस संकलन के सातवें कवि हैं **श्री नरेंद्र ग्रोवर**। ग्रोवर जी गीत-कवि हैं। उनकी रचनाएँ ऐसी गीत-रचनाएँ हैं जिनमें प्रेम है, सौंदर्य है रहस्य-भावना है और है भाव-लोक की अनेक झाँकियाँ। '**पायल की झनकार बसा दो**' बड़ा ही मादक और मनोरम गीत है जिसमें कोई प्रेयसी अपने

प्रियतम से तरह-तरह के अनुरोध करती है। जहाँ प्रेम है वहाँ अभिलाषाएँ और आशाएँ तो होंगी ही। यही कारण है कि कवि नरेंद्र ग्रोवर की रचनाएँ कभी '**नीरस गीतों के आँगन में, पायल की झनकार बसा देने**' की बात कहती हैं, तो कभी 'मंज़िल' तक पहुँचने की सच्ची राह दिखने की बात कहती हैं, कभी चंद्रमा से ज्योति-किरण लेकर बुझते दीपकों को जलाने का अनुरोध करती हैं तो कभी यह कहती हैं—

'तुम बनकर सिंदूर प्रीत का
माँग किसी की आज सजा दो।'

उनके गीतों में कहीं-कहीं महाकवि जयशंकर प्रसाद और उन जैसे ही अन्य छायावादी कवियों की 'रहस्य-भावना' के दर्शन भी होते हैं। निम्नलिखित सुंदर पंक्तियाँ इस बात की साक्षी हैं—

'कौन हो, क्या हो, कहो किस नाम से तुमको पुकारूँ
क्या तुम्हीं हो वेदना के गान में जिसको उतारूँ
दूर रहकर भी हृदय के पास कितने हो गए हो
कौन है जो गीत में मेरे उतरता जा रहा है।'

जहाँ प्रेम है वहाँ आशाएँ अपना शृंगार करने लगती हैं। नकारात्मक स्थितियों में भी सकारात्मकता विद्यमान रहती है। और इसी कारण कवि कह उठता है—

'माँग न भर पाए तो क्या
पर भावों का संसार दिया
मेरे नीरस जीवन को
इन सपनों का उपहार दिया'

'**कलियाँ चटखीं**' कविता यद्यपि गीत नहीं है किंतु उसमें गीत जैसा प्रवाह है। इसका मूल कारण यह है कि नरेंद्र ग्रोवर जी मूलत: गीतकार हैं। जैसा कि मैंने पहले ही कहा कि वे सकारात्मक सोच के ही गीतकार हैं इसीलिए उनकी ये पंक्तियाँ भी आशा का दीप साथ में लेकर काग़ज़ पर उतरी हैं—

'तुम आओगे इस आँगन में
आशा के दीप जलाएँगे
फिर से चटखेंगी ये कलियाँ

फिर से भँवरे मुस्काएँगे
फिर से सावन की बाँहों में
झूम-झूम खो जाएँगे।'

'मेहमान' कविता में नरेंद्र ग्रोवर जी ने जीवन की सच्चाई को बड़े ही मनोरम ढंग से चित्रित किया है। वे कहते हैं कि समय आगे बढ़ता जाता है तो हमारे अपने जीवन में जो पहले था, वह नहीं रहता। सब कुछ बदल जाता है। फिर जीवन के गेह का द्वार खटखटाने पर भी वे पल सामने नहीं आते जो गुज़र गए। इसी तथ्य को प्रकट करती हुई ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'वक़्त ज़िंदगी को बड़ी तेज़ी से
लिए जाता है उस तरफ़
जहाँ ज़मीन-आसमान एक हो जाते हैं
जहाँ ज़िंदगी मौत, दु:ख-सुख का
कोई भरम नहीं रहता
बस एक अनथक ख़ामोशी ही नज़र आती है।
दरवाज़ा खटखटाने से/अब कुछ नहीं होगा
वो लोग/जिनको आप ढूँढ़ने निकले हैं
अब यहाँ नहीं रहते।'

इस प्रकार श्री नरेंद्र ग्रोवर की कविताएँ जहाँ एक ओर प्रेम-रस का पान करा रही होती हैं वहीं दूसरी ओर वैराग्य के क्षणों में भी ले जाती हैं और हमें हमारी अपनी अनुभूतियों से जोड़ती हैं।

☐

इस संकलन की आठवीं रचनाकार हैं **सुश्री पुष्पा राव।** इनकी दो कविताएँ **'शायद उसे नहीं मालूम'** तथा **'ख़त'** बहुत मार्मिक हैं। पहली कविता कविता के रूप में हृदय से निकली आह है। ऐसी आह, जो मृत्यु को संबोधित करते हुए इस प्रकार शब्दमुखी हुई है—

'किसे दोष दें / मौत को या ज़िंदगी को

क्या इतने ही दिन लिखा लाई जीने को
ऐ बेरहम मौत, मुझे आई न दया
इन मासूम बच्चों को दिल तोड़ दिया'

मृत्यु अटल सत्य है, इस बात को कवयित्री अच्छी प्रकार समझती है और यह कह देती है—'**आएगी ये दस्तक एक दिन, यह पता है/बहलाते हैं दिल को यह कहकर/कि शायद/उसे नहीं मालूम हमारे घर का पता।**'

हृदय में समाहित प्रेम जब तीव्रता के साथ हृदय को आंदोलित करता है तो वह अभिव्यक्ति चाहता है। किंतु प्रिय यदि दूर हो तो यह अभिव्यक्ति किस तरह संभव हो?···केवल पत्र ही आत्माभिव्यक्ति का साधन होता है। पुष्पा राव की '**ख़त**' कविता में इसी प्रकार की अभिव्यक्ति है। प्रिय के द्वारा लिखे हुए ख़त, उनका एक-एक अक्षर आत्मीयता का परिचायक होता है। प्रिय के हृदय की छलकन जब काग़ज़ पर उतरती है तो प्रेमी-पाठक के हृदय को भी तरंगित कर देती है और डुबा देती है एक असीम भाव-सागर में। किंतु कभी ऐसा भी होता है कि यही जीवंत ख़त कभी आग के हवाले कर दिए जाते हैं और कभी गंगा को समर्पित। कवयित्री ने भी कुछ ऐसा ही किया है। जिन ख़तों के बारे में उन्होंने ये कहा था—

'ख़ुशबुए प्यार भरे
ख़त ये सारे तेरे
जलाऊँ तो जलाऊँ कैसे?'

उन्हीं ख़तों के बारे में वे यह भी कहती दिखाई दी हैं—'**चोरी-चोरी बहा दरिया में/इनको आई/मार तुमसे नहीं/खुद से खाई।**'

पुष्पा राव के भाव-लोक में जो संवेदनशीलता है वह शब्दों को भी आँसुओं में डुबाने की क्षमता रखती है। यह बात उनकी कविताओं को पढ़ने के बाद स्पष्ट हो जाती है।

☐

सुश्री रमा जोशी इस संकलन की वह कवयित्री हैं जिनकी कविताओं में कहीं दार्शनिकता है तो कहीं ममत्व की खोज, कहीं सामाजिक विषमता

की अभिव्यक्ति है तो कहीं सोच को सकारात्मक दिशा देने का संकल्प, कहीं मृत्यु का आमंत्रण है तो कहीं मनोविज्ञान की झलक। उनकी 'पूरे अधूरे सपने' कविता में जीवन के उन दोहरे रंगों की चर्चा की गई है जो सुख-दु:ख और आशा-निराशा के रूप में बिखरे पड़े हैं। हम सपने देखते हैं, उनमें से कुछ साकार हो जाते हैं और कुछ टूटते भी हैं। किंतु कवयित्री उस सकारात्मक सोच की कवयित्री है जो जीवन को निरंतर अग्रसर रखती है। यही कारण है कि वे उस सकारात्मक सोच को इस रूप में अभिव्यक्त कर सकी हैं—

'पर जो मोती मिलकर टूट गए
सपने जो सच थे
फिर बने सपना।'

'प्रश्न-१' तथा 'प्रश्न-२' कविताओं में कवयित्री समसामयिक समस्याओं से जूझती दिखाई दी है। यह सच है कि कविता शाश्वत सत्यों के कारण, शाश्वत विषयों पर लेखन की वजह से शाश्वत बनती है किंतु समसामयिक समस्याओं पर क़लम न चलाने से भी कवि अपने दायित्व से विमुख माना जाता है। समसामयिक समस्याओं की अभिव्यक्ति में संवेदना का तत्त्व तो शाश्वत ही होता है। रमा जी ने इस दायित्व का ख़ूबसूरती से निर्वाह किया है। एक माँ यदि अपने बच्चों को लेकर रेल से कटकर आत्महत्या कर लेती है तो इसके पीछे कोई तो कारण होगा। वह उसका मनोविज्ञान भी हो सकता है और सामाजिक कारण भी। कोई विवशता ही रही होगी, नहीं तो कोई क्या ऐसा कर पाता। कवयित्री अनेक प्रश्न उछालती है—

'तुम यह सब थीं—एक नारी, एक माँ, युवा!...
एक खाते-पीते देश में यह क्या किया तुमने।...
ढेरों प्रश्न
क्यों किया ऐसा?
दु:खी थीं क्या?
दु:खी तो होगी न?...रुग्ण थीं क्या?'

कई बार ऐसा होता है कि व्यक्ति बहिर्मुखी से अंतर्मुखी हो जाता है। जब बाहर के 'सहारे' गिर जाते हैं या समाप्त हो जाते हैं तो व्यक्ति को अपनी ओर लौटना होता है। '**घर में मग्न**' कविता में कुछ ऐसी ही भावाभिव्यक्ति है—'**अब/रच बस गई हूँ जीवन में/छोटी-बड़ी ख़ुशियों में मग्न/शुक्रगुज़ार हूँ/सफ़र इतना तय हुआ।**'

'**तुम्हें जल्दी जाना था**' कविता कविता होते हुए भी एक मार्मिक कहानी सी लगती है। आज के इस गतिशील युग में व्यक्ति भागम-भाग में लगा हुआ है। सारी सुविधाओं और सारे आकाश को कुछ ही क्षणों में अपनी मुट्ठी में क़ैद कर लेना चाहता है। इसलिए, कि वह अपने प्रिय-जनों को, अपने परिवार को अच्छी-से-अच्छी सुविधाएँ दे सके। कवयित्री ने इस भागम-भाग को, इस जल्दबाज़ी को अपने प्रिय के बिछोह से जोड़कर कविता को और अपनी मार्मिक संवेदना को एक हृदय-विदारक मोड़ दिया है और यह अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई—

'तुम गए/सारा खेल ख़त्म
दौड़ क्या इसलिए थी
कि तुम्हें जल्दी जाना था
शायद, जल्दी ही जाना था तुम्हें!'

रमा जोशी की 'बिखरा दिन' कविता में भी बिखरे हुए को समेटने की आशा और संकल्प है। कवयित्री ने बताया है कि यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जब हम ख़ुश हैं तो सारा संसार ख़ुश नज़र आता है। हम अगर बिखरे हुए हैं तो सब कुछ बिखरा दिखाई देता है। इसलिए वह उस कविता का प्रारंभ इस वाक्य से करती हैं—'**आज का दिन/बिखरा-बिखरा है**' किंतु कविता का अंत इन आशावादी पंक्तियों से करती हैं—

'कोई कहता है—
नहीं, दिन बिखरा नहीं है
और बिखरा है तो केवल मन!
इसके कोने स्वयं ही समेटने हैं—हमें स्वयं ही
और सुंदर बनाने भी हैं

सुंदर ये सब!'

इस प्रकार भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियों से रमा जोशी की कविताएँ आकर्षक एवं हृदयंगम करने योग्य हैं।

इस संग्रह की एक प्रमुख कवयित्री के रूप में **सुश्री स्वर्ण तलवाड़** का नाम आता है। उनकी पाँच कविताएँ—'**गन-कल्चर**', '**आवाज़**', '**लेना-देना**', '**तिथि**' एवं '**वृक्षराज**'—इस संग्रह में संकलित हैं। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ कि कवि का कार्य केवल अपनी ओर उन्मुख होकर कविता करना नहीं है, वरन् सामाजिक सरोकारों से जुड़ना भी है। कवयित्री ने आज के विश्व में जो हिंसा का बोलबाला है, उस पर कटाक्ष करते हुए आज की कल्चर को '**गन-कल्चर**' की संज्ञा दी है। उसे क्षोभ है इस बात का, कि जो बंदूक देश की रक्षा के लिए थी वही अब देशवासियों के ही प्राण लेने में तत्पर क्यों दिखाई देती है? वे आज के हालात पर व्यंग्य करते हुए कहती हैं—

'एक समय था/जब सरहद पर तैनात
देश के रक्षक सिपाही के कंधे पर टिकी बंदूक़
उसकी आन, बान और शान थी···
···एक समय है आज—
युवा बन गया है भक्षक
बंदूक़ बन गई है खिलौना
मानव की हिंसक प्रवृत्तियों के
मनोरंजन का रूप घिनौना'

'**आवाज़**' कविता में भी स्वर्ण तलवाड़ जी ने अपनी गहन काव्यात्मकता का परिचय दिया है। एक रहस्य भाव इस कविता में छुपा है। वह कहती हैं—'**बरसों पहले/पहाड़ की ऊँची चोटी से/तुमने ऊँची आवाज़ में/केवल एक शब्द कहा/जिसकी गूँज समस्त घाटियों में/वृक्षों, फूलों और पत्तों में समा गई।**' इस कविता की पंक्तियों में आया 'एक शब्द' ही वह रहस्य-बिंदु है जो कभी 'प्रेम' शब्द की ओर इंगित करता है और कभी कवयित्री के स्वयं के नाम की ओर। फिर अचानक पूरी कविता अहिल्या

की कथा की ओर मुड़ जाती है, जो उस गूँज की ओर इशारा करती है, जिसे फिर प्राण मिलेंगे और तब एक नहीं दो शब्द होंगे—'शांति! शांति।'

'**लेना-देना**' कविता में आज के समाज की लोभ-प्रवृत्ति पर कटाक्ष किया गया है। वह कहती हैं—

'जीवन के किसी भी मोड़ पर
धरती के किसी भी छोर पर
क्या सोच रहा है मानव?
क्या विचार किया है किसी ने?
हर व्यक्ति कुछ पाने की चाह में
बँधा लालसा और मोह के बाहुपाश में
भूल गया है कुछ देने की सभ्यता!'

'**तिथि**' कविता एक ऐसी कविता है जिसमें यादों की सोंधी गंध बसी है। अक्सर हम कलेंडर की विशेष तिथियों पर जो हमसे जुड़ी होती हैं, गोले खींच देते हैं। कवयित्री स्वर्ण तलवाड़ ने बड़ी बारीकी से उन्हें देखा है और अपनी कल्पनाशीलता का परिचय दिया है और उनका मानवीकरण (Personification) भी किया है—

'बनकर रह गए
दीवार पर टँगे कलेंडर की धरोहर,
तिथियाँ पर पेंसिल के गोले खिंचे हैं
गोलों की क़ैद में बंदी बनकर जी रही हैं
जीवन की प्यारी अनमोल स्मृतियाँ।'

सुश्री स्वर्ण तलवाड़ की '**वृक्षराज**' कविता भी बड़ी ही प्रतीकात्मक है, जो चंदन के वृक्ष हैं उनसे नाग तो लिपटते ही हैं किंतु कवयित्री कहती है कि वह एक रागिनी है जिसमें गीत है, संगीत है, धुन है, लय है, दोहे हैं, छंद हैं। अतः वृक्षराज नागों पर ध्यान न देकर रागिनी का राग सुनकर झूमे-लहलहाए। लगता है, कवयित्री ने सारे संसार को 'वृक्षराज' का प्रतीक बनाया है और नागों को विषमताओं और संहार का। रागिनी प्रेम का प्रतीक है। यदि प्रेम की रागिनी बजती रहती है तो विषम परिस्थितियाँ और विरोधी

संदर्भ भी संसार का कुछ नहीं बिगाड़ सकते। प्रेम ही संसार की सबसे बड़ी रागिनी है।

इस प्रकार सुश्री स्वर्ण तलवाड़ की ये कविताएँ भाषा, शिल्प और भाव की दृष्टि से ऐसी कविताएँ हैं जो व्यक्ति की चेतना को झकझोरती हैं। इनकी कविताओं में प्रकृति के अनेक प्रतीकों का सटीक प्रयोग हुआ है।

इस संकलन की ग्यारहवीं कवयित्री **सुश्री अरुण सब्बरवाल** हैं। इनकी भी पाँच कविताएँ संकलित हैं—'**निराकार अस्तित्व**', '**आमंत्रण**', '**प्रिय तुम्हारी आँखों में**', '**आधी रात**' और '**प्रिये**'। 'निराकार प्रियतम' में कवयित्री में जिंदगी का 'फ़लसफ़ा' दिया है। जो बीत गया वह निराकार प्रियतम है और जो वर्तमान है उसे कवयित्री 'साकार प्रियतम' के रूप में प्रस्तुत करती है। इनका कहना है कि यदि आगे बढ़ना है तो वर्तमान के साथ क़दम-से-क़दम मिलाकर चलना चाहिए। भूतकाल जो निराकार प्रियतम है, उसे मुक्त करके ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। सचमुच इस कविता से जीने की कला की सीख मिलती है और यह सीख बड़े ही कलात्मक और काव्यात्मक ढंग से दी गई है।

'**आमंत्रण**' कविता में अरुण सब्बरवाल जी ने जहाँ अपने प्रिय के लिए हृदय-द्वार सदा-सदा के लिए खुले रखे हैं, वहीं '**प्रिय तुम्हारी आँखों में**' शीर्षक कविता में कवयित्री ने अपने प्रिय की आँखों की ख़ामोश भाषा को भी पढ़ लिया है। प्रेम की गहनता इसी बात से पता चलती है कि प्रेमी ने अपने प्रिय के मौन को भी समझ लिया हो। तब ही तो वे कहती हैं—

'प्रिय तुम्हारी आँखों में
देखा मैंने एक रोता बादल
प्रिय तुम्हारी आँखों में
देखी मैंने एक मौन व्यथा।'

'**आधी रात**' शीर्षक कविता में उस प्रिय की याद को रेखांकित किया गया है जो सोने भी नहीं देती किंतु जब यह याद की चादर सुलाती है तो एक मीठी मुस्कान थिरक उठती है होंठों पर और एक मीठी नींद में सुला देती है वह।

प्रेम में रहने पर प्रेमी अपने प्रिय से न जाने क्या-क्या कहना चाहता

है और न जाने क्या-क्या सुनना चाहता है। वह तरसता रहता है अपने प्रिय के बोल सुनने को।``किंतु विवशताएँ अपनी जगह पर बनी रहती हैं तब ही तो वे कहती हैं—

'याद आ गया
पता तुम्हारा नहीं है मुझ पर
बोलो प्रिये!
अब पतिया लिखकर भेजूँ कहाँ,
कहाँ पर भेजूँ।'

सामान्यत: सच्चा प्रेमी अपने प्रिय की अवहेलना में भी कोई सकारात्मक कारण ढूँढ़ लेता है और उससे शिकवा नहीं करता। तब ही तो इसी कविता में अरुण सब्बरवाल एक सकारात्मक संभावना ढूँढ़ लेती हैं और यह कहती हैं—

'बहुत दिनों से
तुमसे बात नहीं हो पाई
शायद!
शायद अनजाने में
मिलना भूल गए हो तुम भी।'

यहाँ 'शायद अनजाने में' शब्दों के माध्यम से प्रेमी ने अपने प्रिय की उपेक्षा को भी सकारात्मक मोड़ दे दिया है। कुल मिलाकर अरुण सब्बरवाल की कविताएँ भावों से भरी और सकारात्मक सोच की कविताएँ हैं।

□

सुश्री जय वर्मा इस संकलन की एक ऐसी कवयित्री हैं जिनकी कविताओं में सहजता की गंध और सुगमता का सौंदर्य है। इनकी कविताओं में जितनी सच्ची अनुभूतियाँ हैं उतनी ही सच्ची अभिव्यक्ति भी। उनकी 'ख़त' शीर्षक कविता में उनके हृदय की सरलता और प्रेम का समर्पण भाव देखने को मिलता है। प्रिय से मिलने के उपरांत उन्हें और किसी की भी ख़्वाहिश नहीं—

'साथ है तुम्हारा तो मंज़िल की मुझे तलाश नहीं

चारों तरफ़ है चाँदनी तारों की मुझे ख़्वाइश नहीं'

प्रेमी की इच्छा होती है कि उसका प्रिय उसके ख़यालों में निरंतर आता रहे, किंतु कभी उसकी यह भी चाहत होती है कि वह उसे रूबरू भी मिले—

'मेरा यह पैग़ाम ज़ल्द ही तुम तक पहुँचे
कि अब की बार ख़्वाब में नहीं रूबरू मिलो।'

'**आशा**' कविता में वे स्पष्ट कहती हैं—

'सहयात्री हैं हम, एक पथ के
गीत भी तुम्हीं और मीत भी तुम्हीं।'

···और प्रेम में रूठना-मनाना तो चलता ही रहता है। अगर कोई रूठे नहीं तो प्रेम में कुछ कमी मानी जाती है किंतु कोई मनाए ही नहीं तो फिर···। तो फिर, एक अजीब सी अकुलाहट होती है। यही कारण है कि जय वर्मा अपनी '**दूरी क्यों**' कविता में अचानक एक प्रश्न कर बैठती हैं, जो बड़ा ही सच्चा और व्यंजक भी है—

'क्यों, एक बात पूछूँ
जिस दिन मैं तुमसे रूठी थी
तुमने न मुझे पुकारा
और न ही मनाया
क्यों किया ऐसा?'

'**मुक्त**' कविता में जय वर्मा ने ऐसी अनेक बातें गिनाई हैं जिनसे मानव कभी भी मुक्त नहीं हो सकता। यह कविता कविता न लगकर सूक्तियों का एक गुलदस्ता है, ऐसी सूक्तियाँ—जो सदियों के चले आते सच्चे अनुभवों का ही परिणाम हैं।

'**नारी**' कविता बड़ी मार्मिक और ममत्व का सुंदर उदाहरण है। यह कविता कहानी जैसा आनंद देती है, जिसमें एक माँ अपने बच्चे के साथ स्वयं को डॉक्टर को दिखाने आई है किंतु वह अपने दु:ख को भूलकर डॉक्टर से कहती है—

'डॉक्टर मैं तो ठीक हूँ
बस आप मेरे बच्चे का कर दो इलाज।'

कहा भी जाता है कि पुत्र चाहे कुपुत्र हो जाए किंतु माता कभी कुमाता नहीं होती। माँ की वात्सल्यमयी गोद अपने बालक के लिए सदैव तत्पर रहती है। जय वर्मा ने इस कविता में माँ की उस वात्सल्यमयी मूर्ति को स्थापित किया है जो विश्व-मंदिर में कहीं भी चले जाइएगा, मिलेगी ही। ऐसी कविताओं के कारण ही जय वर्मा 'सांस्कृतिक मूल्यों' की कवयित्री कही जाती हैं, जो सरल भाषा में बड़ी ही सहजता के साथ महत्त्वपूर्ण विषयों को प्रस्तुत करने में सक्षम हैं।

□

श्री कृष्ण कन्हैया इस संकलन के वह कवि हैं जिनकी क्रमशः '**फ़ितरत**', '**हवाएँ**', '**संबंध**', '**वस्त्र**', '**डाँट प्यार की**' तथा '**बेल**', ये छह कविताएँ संकलित हैं।

'**फ़ितरत**' कविता में कवि ने अनेक संदेश दिए हैं। ऐसे संदेश जो आदमी को 'इंसान' बनाने के लिए ज़रूरी हैं। जीवन की व्यावहारिकता में भी ये बातें बहुत काम की हैं। जैसे—

'बातें तोलें
तभी बोलें।'

...इतने कम शब्दों में पूरी जिंदगी का फ़लसफ़ा कवि ने रेखांकित कर दिया है।

'**हवाएँ**' कविता में कवि ने 'हवाओं' को मानव का रूप देते हुए उनके कर्त्तव्य और अधिकार दोनों को समझने का प्रयास किया है। हवा सहज रूप में भी चलती है, किंतु कभी-कभी—

'आँधी, तूफ़ान, चक्रवात, बवंडर
ये सब तुम्हारे रूप है
माना कुरूप हैं ये
पर प्राकृतिक कुरीतियों को जीतना भी तो नीति है।'

···सच है जब समाज में कुरीतियाँ, विद्रूपताएँ और विषमताएँ दिखाई देने लगें तो कोमलताओं से काम नहीं चलता। तब तो उन कठोरताओं का उपयोग करना ही पड़ता है जो आँधी-तूफान बनकर इन कुरीतियों को सदा के लिए मिटा दें।

'**संबंध**' कविता में पतंग और पतंग की सामग्री का सांगरूपक तैयार किया गया है और उसके माध्यम से संबंधों को सुरक्षित रखने की विधि बताई है—

'संबंध की पतंग की उड़ान ऊँची हो
इसलिए ज़रूरी है
कि व्यक्तित्व का आकार सही हो
उसे समन्वय की सुई से
सही दूरियों पर छेदा गया हो
संवेदनाई माँझा
धागों पर सही और बारीक लगे हों।'

कृष्ण कन्हैया की '**वस्त्र**' कविता में वस्त्र को एक आवरण की संज्ञा दी गई है जो समाज की नंगी आँखों और शरीर की गरिमा के बीच एक दीवार-सा खड़ा है और जो शर्मसार मौत से भी बचाता है। क्योंकि—

'भूखों की मौत में दिन
बेघरों की मौत में महीने लग सकते हैं
पर शर्मशार मौत में
क्षण से भी कम वक़्त लगता है।'

'**डाँट प्यार की**' कविता में जहाँ एक ओर माँ के ममत्व और प्यार को महत्त्व दिया गया है, वहीं पिता की उस डाँट को भी बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है जिसमें कोई दिशा थी, जिसमें कोई निर्देश था, जिसमें मंजिल तक पहुँचाने वाले रास्ते की आहट थी। यह बात अलग रही कि पिता की डाँट का मतलब बचपन में नहीं, बड़े होकर ही समझ में आता है।

'**बेल**' कविता भी एक प्रतीकात्मक कविता है, जिसमें उन लोगों पर व्यंग्य किया गया है, जो औरों के सिर पर पाँव रखकर आगे बढ़ जाते हैं। अपने विकास

में औरों को साधन बनाते हैं। इसीलिए वे बेल के संबंध में यह कहते हैं—

'ये छुई-मुई काया
आसमान की ऊँचाई चढ़ नहीं पाती
चाहे मौक़ापरस्ती की तोहमत लगाओ
या उलाहने के बड़े शब्द सुनाओ
इसकी फ़ितरत सट जाने की है
औरों के सर पर पाँव रखकर बढ़ जाने की है।'

इस प्रकार कृष्ण कन्हैया की ये सार्थक कविताएँ प्रतीक और सांगरूपक के माध्यम से कही गई वे बातें हैं जो यथार्थ के धरातल पर खरी उतरती हैं।

□

इस संकलन के कवियों में **डॉ. कृष्ण कुमार** एक ऐसे कवि हैं जो 'गीतांजलि बहुभाषीय समुदाय बर्मिंघम, यू.के.' नामक संस्था के संस्थापक भी हैं। इन्हीं के निर्देशन में यह संस्था फल-फूल रही है। डॉ. कृष्ण कुमार जहाँ एक ओर उच्च कोटि के इंजीनियर हैं, प्रोफेसर हैं, वहीं साहित्य-लेखन तथा पुरातत्त्व में भी उनका अच्छा दख़ल है। इस संकलन में उनकी पाँच कविताएँ संकलित हैं जो देखने में 'फ्री-वर्स' लगती हैं किंतु वे एक प्रकार से गेय रचनाएँ ही हैं। उनकी रचनाओं का मूल स्वर अध्यात्म और दर्शन है। इसी स्वर से जो राग-रागनियाँ निकलती हैं उनकी गति कभी कर्मठता की ओर तो कभी मन के संतुलन की ओर, कभी चेतना की जागृति की ओर तो कभी प्यार की भाषा की ओर जाती दिखाई देती हैं।

'**क्यों ढूँढ़ते हो**' शीर्षक कविता में सूर-तुलसी और कबीर का उदाहरण देते हुए करनी और कथनी की एकरूपता का संदेश मिलता है। वे कहते हैं—

'तुम न मानोगे, मगर यह सत्य है
सूर-तुलसी औ' कबीरा कह गए
धर्म के सिद्धांत सारे
जिंदगी औ' मौत के रिश्ते निराले

आचरण का ले सहारा
शब्द में वे रख गए।'

डॉ. कृष्ण कुमार चाहते हैं कि हम भी इन कवियों की तरह जो कुछ भी कहें उसे आचरण में भी लाएँ और जैसा आचरण हो उसी के अनुसार अपनी कथनी को गौरवान्वित करें। इसी के साथ-साथ वे इसी कविता में धार्मिक एकता की बात भी करते हैं।

'कर्म का उपहार' कविता में वे कर्म को जीवन का सर्वश्रेष्ठ उपहार मानते हुए ज़िंदगी और मौत को सूत्रात्मकता के साथ परिभाषित करते हैं। वे कहते हैं—

'ज़िंदगी—
सुंदर-सुखद है
कर्म का उपहार है
मौत—
इसके अंत का ही
शांतिमय संसार है।'

'कल काल तो पछताएगा' कविता में डॉ. कृष्ण कुमार मन के नियंत्रण पर सर्वाधिक बल देते हैं। उनका मानना है कि आज की दुनिया अस्त्र-शस्त्रों की दुनिया है। चारों तरफ़ हिंसा और विध्वंस की हवाएँ चल रही हैं। दुनिया विनाश के कगार पर बैठी है। यदि किसी के मन में पूरी तरह विध्वंस की बात आ गई तो एक पल में ही यह सुंदर संसार राख बन जाएगा। इसीलिए वे इस बात को रेखांकित करते हैं कि ऐसे में, मन का संतुलन 'विचार' और 'सोच' ही इस विध्वंस से दुनिया को बचा सकते हैं। वे उद्घोषणा करते हैं—

'यह विचारों की सदी है
अस्त्र-शस्त्रों की नहीं।'

आगे वे यह भी कहते हैं—**'दूर करने को तिमिर संसार से/क्रांति**

जग में/सोच की/लानी पड़ेगी/अन्यथा कल काल तो पछताएगा।'

'**कैसे जगाऊँ**' कविता में उन्होंने जमीन पर चलते और फिर आकाश में उड़ते विमान को देखकर आए हुए चैतन्य भाव को समाहित किया है। डॉ. कृष्ण कुमार विज्ञान से संबंध रखते हैं और अध्यात्म से भी। इसलिए उन्होंने विमान के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि एक ओर भौतिक जगत् है तो दूसरी ओर आध्यात्मिक जगत् भी है। जैसे विमान पहले जमीन पर चलते हुए दिखाई देता है और बाद में आकाश में थोड़ी देर दिखाई देकर फिर आँखों से ओझल हो जाता है, वैसे ही यह सारा संसार तो दृश्यमान है किंतु जो अदृश्य है वह भी सत्ता में है। वे कहते हैं—

'दृष्टि की होती विवशता
यह नियम विज्ञान का है
चक्षु अंत: देखता,
वह (विमान) व्योम में लेकिन टिका है
हो रहा जो विश्व में
सब देखते हैं।'

'**चेहरा तेरा**' कविता में कवि ने व्यष्टि-प्रेम को ही समष्टि-प्रेम का प्रेरक माना है। वे मंदिर, मस्जिद और गिरिजाघरों के मुक़ाबले हृदय में बसे प्रेम को ही आतंक को मिटाने वाला सबसे बड़ा शस्त्र मानते हैं और इस भाव को इन शब्दों में पिरोते हैं—

'प्यार की भाषा सिखाकर
शांति का दीपक जलाओ
बढ़ रहे आतंक से इस
आ स्वयं को अब बचाओ।'

इस प्रकार डॉ. कृष्ण कुमार की कविताएँ विचारोत्तेजक, भावपूर्ण तथा संसार के कल्याण के लिए लिखी गई कविताएँ हैं, जो साहित्य-लेखन के उच्चतम उद्देश्य की पूर्ति भी करती हैं। डॉ. कृष्ण कुमार की कविताओं में एक और विशेष बात देखने को मिलती है, वह यह कि उनकी भाषा शुद्ध

हिंदी अर्थात् तत्सम शब्दावली वाली भाषा है, जो उनके गंभीर विचारों को व्यक्त करने के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

☐

इस संकलन के कवियों में **श्री सर्वेश सैनी** की कविताएँ भी इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं कि इन कविताओं में सशक्त बिंब-विधान और चित्रात्मकता है। कविता पढ़ते समय ऐसा लगता है जैसे हम कोई पेंटिंग देख रहे हों। इनकी पहली कविता **'इक एहसास'** शीर्षक से है और उसकी पहली पंक्ति से ही पेंटिंग शुरू हो जाती है—

'धूप ओढ़े बैठे दरख़्तों के साये
परिंदे यहाँ छटपटाने लगे हैं
उजालों की बदली नीयत है ऐसी
दबे पाँव आकर डराने लगे हैं।'

केवल चित्रात्मकता ही हो ऐसा नहीं, वरन् सर्वेश सैनी ने अपनी कविताओं में सशक्त प्रतीकों का प्रयोग भी किया है। आज की भौतिक सभ्यता की ललक मानवता को शर्मसार कर रही है और इंसान को डरा भी रही है। इस बात को उन्होंने भौतिक सभ्यता को उजाले का प्रतीक दिया है। आज इतना अँधेरों से डर नहीं है जितना उजालों से। हम जितने ही तथाकथित रूप में सभ्य होते गए उतने ही हिंसक भी होते गए। वे कहते हैं—

'इन दस्त-ए-मुबारिक की नीयत की खोटी
इक हाथ बारूद है इक हाथ रोटी।'

सर्वेश सैनी का एक गीत भी इस संकलन में है, जिसमें वे उन परवाज़ों (उड़ानों) पर गीत लिखने की बात करते हैं जो मुक्त आकाश में अपने पंख पसारती है। वे उस हवा पर गीत लिखना चाहते हैं जो बँटने से भी नहीं बँटती। वे काठ से बनी नाव और पानी के प्रेम पर गीत लिखने की ललक लिए हुए हैं। कवि के मन में सभी धर्मों का आदर है किंतु वे इन धर्मों में एक से पूजा-भाव को प्रमुख मानते हुए कहते हैं—

'दूजा जाए चारों धाम
पाक अजान, माटी के राम

सजदों का है एक ही काम
इक–सी पूजा, इक–सा नाम'

सर्वेश सैनी की '**दर्द**' कविता में भी गहन संवेदना का तत्त्व है। आज भी हज़ारों–लाखों लोग बेमानी ज़िंदगी जी रहे हैं। सूखे सागर के तल में न जाने कितनी हसरतों की अस्थियाँ अस्त हो गई हैं।...और हम केवल उसे देखते रहते हैं, उसके दर्द की तासीर से नावाक़िफ़ हैं। कवि कहता है—

'उसके दर्द को देखा है मैंने
दर्द की तासीर से नावाक़िफ़ ये हाथ
सिर्फ़ छू के ही दर्द टटोल लिया करते हैं
सर्द पोरों की छुअन की चुभन
सबब तो है दर्द की इंतिहा का।'

इस प्रकार कवि सर्वेश की कविताएँ संवेदनात्मक, लयपूर्ण और प्रेम का संदेश देती कविताएँ हैं। भाषा की दृष्टि से इनकी कविताओं में उर्दू के उन शब्दों का बाहुल्य है जो इनकी कविताओं में सहज रूप में उतरे हैं और उन्हें अलंकृत भी किया है।

□

सुश्री कल्पना गवरे इस संकलन की अंतिम कवयित्री हैं। किंतु उनकी रचनाओं में एक ताज़गी है। उन्होंने कुछ गीत लिखे हैं और कुछ अतुकांत कविताएँ। '**तुम तो मेहमान हो**' शीर्षक से जो गीत है, उसमें लय, नाद और शब्द–सौंदर्य बहुत ही आकर्षक हैं। झीलों में नहाती हुई चिड़िया, पानी में तैरती हुई चिड़िया, झील को अपने प्यार की कहानी इस प्रकार सुनाती है—

'चिड़िया करे पुकार
ये झील है मेरा प्यार
तुम तो मेहमान हो।'

कल्पना गवरे अपने दूसरे गीत में ज़िंदगी को एक दार्शनिक अंदाज़

में अभिव्यक्त करती हैं और ज़िंदगी को 'दो दिन का मेला' बताते हुए जीवन की विरोधी स्थितियों पर भी टिप्पणी करते हुए कहती हैं—

'किसी ने किसी का दिल तोड़ा
किसी ने किसी का पल है जोड़ा
जोड़-तोड़ का कैसा है खेल खेला।
ज़िंदगी दो दिन का है मेला॥'

और अंत में ज़िंदगी के उस परम सत्य को भी उजागर किया, जो उसके मौत की गोद में सो जाने से जुड़ा है—

'हम हैं वासी इस धरती के
दो दिन महमाँ इस बस्ती के
जो भी पाया सुख-दु:ख झेला।
ज़िंदगी दो दिन का मेला॥'

'**एक आवाज़**' कविता में संभवत: कवयित्री अपनी रचना-प्रक्रिया की ओर इंगित करती दिखाई देती है। कविता क्या है, वह हमारे मन की अनुगूँज ही तो है, ऐसी अनुगूँज जो पहले ज़हन तक जाती है और फिर काग़ज़ पर शब्द बनकर उतर जाती है। शायद इसी बात को वे इन शब्दों में व्यक्त करती हैं—

'एक आवाज़ दिल की, दिलासा देती हुई
अनोखा-सा प्यार लिए, समा जाती है ज़ेहन में
उस दिलासे पर, अंदर की आवाज
झूमती हुई नज़ारों-सी छा जाती है काग़ज़ पर।'

उनकी अगली कविता ऐसी है जिसमें '**हर साँस में फूलों की ताज़गी**' लगती है। स्मृतियाँ यदि सच्ची स्मृतियाँ हैं तो वे मुरझाती नहीं हैं। हमें उन्हीं पलों में जीवित रखती हैं। उन पलों से हटने ही नहीं देतीं। मिलन की घड़ियाँ यादों की दुनिया में यदि स्थिर हो जाएँ तो वे जीवंत रहती हैं। तब ही तो कवयित्री यह कह उठती है—

'इतनी ज़िंदादिल है मेरी हर रात
कि आज तक सिरहाने का तकिया सोया ही नहीं
मेरी दीवार सजी की सजी है आज तक

एक भी खरोंच उस पर आई नहीं।'

'तुमसे मिलकर' कविता में मिलने के बाद के एकांत की गहन छटपटाहट की अभिव्यक्ति हुई है। सच है, जब तक प्रिय से मिलन न हो तब तक की तन्हाई तो दु:खी करती ही है, किंतु उससे भी अधिक तन्हाई का एहसास उस समय और भी होता है जब प्रिय मिलकर बिछुड़ता है। इसी एहसास को जीने के बाद कवयित्री कल्पना गवरे यह कहती हैं—

'तन्हा तो पहले भी थे
तनहा और हो गए तुमसे मिलकर।
महक पहले भी थी, फूलों में बरकरार,
बंद कली में तन्हा महक को जाना
तुमसे मिलकर।'

□

इस प्रकार जब मैं इस संग्रह के सोलह कवियों-कवयित्रियों की सतहत्तर कविताओं से होकर गुज़रा तो मुझे लगा कि मैं फूलों की ऐसी वाटिका में विचरण कर रहा हूँ जिनमें तरह-तरह की रंगतें हैं। कहीं किसी डाल पर कलियाँ स्वयं को समेटे हुए अपनी सुगंध बिखेर रही हैं तो कहीं ये कलियाँ चटकने को आतुर हैं। कहीं फूल प्रफुल्लित होकर अपनी पाँखुरियों को बाहर फैलाए हुए अपना मकरंद लुटा रहे हैं तो कहीं मदमस्त भ्रमर कलियों और फूलों की पाँखुरियों में संचित मधु का पान कर रहे हैं। कहीं तितलियाँ अपने रंग-बिरंगे पंखों की विभिन्न छवियों का दर्शन करा रही हैं तो कहीं किसी शाख़ पर बैठकर बुलबुल गुनगुना रही है। कहीं पुरवाई के मधुर झोंके तरुवर की कोमल शाख़ाओं के पास जाकर पूरी पत्तियों और कोयलों से अठखेलियाँ कर रहे हैं तो कहीं पछवा के झोंके पुरवाई से उलझ रहे हैं। कभी-कभी इस संकलन की कविताओं के बीच से निकलते हुए मुझे ऐसा लगा जैसे मैं महानगरों की सड़कों की भागमभाग को देख रहा हूँ। उन्नत अट्टालिकाओं के किसी सूने कक्ष में तन्हाई की चीख भी सुनने को मिली मुझे इन कविताओं में। कभी मुझे लगा जैसे मैं पर्वत-शिखरों और घाटियों से गुज़र रहा हूँ। ऐसे पर्वत-शिखर जिनसे कोई पुकार आ रही है और घाटियाँ जिन्हें सुन रही हैं। इन कविताओं में मुझे कहीं तन पर बिखरे

सौंदर्य की विभिन्न छवियाँ भी मिलीं और कहीं मन की दुनिया के विभिन्न रहस्य भी। यही नहीं, मुझे अनेक रचनाओं में आत्मा के आनंद की अनुगूँज भी मिली। हाँ, मुझे इन कविताओं में माटी की सुगंध, नभ का विस्तार, जलाशयों की तरलता, पवन के परस और प्रेम की आँच के भी दर्शन हुए।

यहाँ मैं यह बात धड़ल्ले से और निस्संकोच कह सकता हूँ कि भले ही इस संकलन की रचनाएँ प्रवासी भारतीय रचनाकारों द्वारा रचते हैं किंतु भाषा, भाव, विचार और शैली के स्तर पर एवं अन्य साहित्यिक मानकों की दृष्टि से, किसी भी प्रकार मूल भारतीय रचनाकारों की रचनाओं से कम नहीं हैं। ये रचनाएँ पाठकों और समीक्षकों से यह अपेक्षा करती हैं कि उन्हें प्रवासी रचनाकार और भारतीय रचनाकार इन दो खेमों में बाँटकर न देखा जाए, वरन् रचनाओं को उनकी 'स्व-सत्ता' के स्तर पर ही समझा और आँका जाए।

डॉ. कृष्ण कुमार जी ने मुझे इस संकलन की भूमिका लिखने के लिए चुना, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। यदि ऐसा न होता तो मैं सचमुच ऐसी सुंदर रचनाओं से वंचित रह जाता, जो इस संकलन में अपनी-अपनी आभा को बिखेरकर अपनी अलग पहचान बना रही हैं। सूर्य के पास करोड़ों किरणें हैं, किंतु इस संग्रह के सोलह रचनाकार 'सूरज की सोलह किरणें' बनकर उदित हुए हैं। ये सोलह किरणें कविता को वही रंगत दे रही हैं जो किसी सुंदरी को सोलहवाँ साल देता है या फिर सोलह शृंगार।

समुद्र के उस पार यू.के. में बैठे हुए हिंदी भाषा और साहित्य की सेवा करनेवालों को मेरे शतशः नमन।

कुँअर बेचैन

(कुँअर बेचैन)

कवितायन,
२ एफ-५१, नेहरू नगर,
गाजियाबाद, (उ.प्र.), भारत
email : kneehain@yahoo.co.in

पुरोवाक्

गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय, यू.के. के भाषायी समन्वय अभियान के तेरहवें वर्ष में समुदाय के सदस्यों का पाँचवाँ काव्य-संकलन 'सूरज की सोलह किरणें' सुधी पाठकों एवं प्रशंसकों को प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। इससे पहले के चारों संकलन बहुभाषीय थे, जिसमें अंग्रेजी भाषा को, देश, काल एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए संपर्क भाषा के रूप में अपनाया गया था। यह संकलन कई मायनों में महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह संस्थागत सदस्यों का विश्व में प्रकाशित होनेवाला और प्रवासी भारतीयों की भावनाओं को व्यक्त करनेवाला हिंदी भाषा का पहला संकलन होने का गर्व रखता है। प्रवासी साहित्य क्या है, इसके बारे में लोगों की अपनी-अपनी धारणाएँ हैं। वास्तव में प्रवासी वह है, जो अपनी जन्मभूमि को छोड़कर कहीं और बसकर अपनी नई कर्मभूमि एवं भावभूमि का, स्वेच्छा से और कई अन्य कारणों से, चयन करता है। ऐसे विस्थापितों द्वारा जो कुछ भी लिखा-रचा जाता है, वह प्रवासी साहित्य ही कहलाएगा; क्योंकि उनके मन-मानस में जन्मजात अनुभवों एवं संवेदनाओं के साथ-साथ नए अनुभवों, चिंताओं, सरोकारों एवं समस्याओं का समावेश स्वत: होता है, जो उनकी रचनाओं में छन-छनकर आता रहता है। हर प्रवासी के हृदय में निवासी बने रहने की और बनने की ललक सदैव रहती है। वे अपनी जमीन से कट नहीं सकते हैं और यही कारण है कि सदियों से गिरमिटिया भारतीय अब भी भारतीय संस्कृति से जुड़े हैं। प्रवासियों के साहित्य एवं चिंताओं को अलग-थलग करके ही देखना अन्याय होते हुए न्यायसंगत नहीं होगा। हाँ, यह बात और है कि प्रवासी भारतीयों ने अपनी अलग पहचान भी बनाई है, जो इस काव्य-संकलन में नज़र आएगी। प्रवासी साहित्य में केवल उन रचनाओं को रखना या ढूँढ़ना जिनमें कवेल बाह्य इंद्रिय-जनित भावनाओं का समावेश

हो, संभवत: पूर्ण सत्य न होगा और वाङ्मय के वृहत् परिवेश को सीमित करना होगा।

भावनाओं एवं मातृभाषा के आधार पर यह संकलन भी बहुभाषीय है, क्योंकि इसमें उन कवियों की रचनाएँ भी हैं, जिनकी मूल भाषा हिंदी नहीं है, जैसे—परवेज़ मुज़फ़्फ़र की मातृभाषा उर्दू है, पुष्पा राव की तेलुगु, कल्पना गवरे की मराठी और विभा केल, चंचल जैन, अरुण सब्बरवाल और सर्वेश सैनी की पंजाबी। इन सबकी प्रवासी रचनाएँ, हिंदी भाषा में, शोध का विषय बन सकती हैं। सोलह रचनाकारों में से तीन का संबंध गीतांजलि की शाखा गीतांजलि बहुभाषीय साहित्य समुदाय ट्रेंट से है और बाकी तेरह का मूल गीतांजलि बर्मिंघम से। इस संकलन की परिकल्पना लगभग तीन वर्ष पहले हुई थी, जब सदस्यों ने यह इच्छा व्यक्त की कि अब समुदाय के काव्य-संकलन भाषावार भी होने चाहिए। हिंदी भाषा में प्रस्तुत यह इस कड़ी का पहला संकलन है और यह आशा की जाती है कि भविष्य में अन्य भाषाओं के संकलन भी प्रकाश में आएँगे।

प्रकाशन प्रक्रिया के अंतर्गत सभी सदस्यों से दस-दस अप्रकाशित रचनाओं का अनुरोध किया गया था। जब लगभग सबकी रचनाएँ आ गईं तब रचनाओं के स्तर को स्थापित करने एवं काव्य-सौष्ठव को ध्यान में रखते हुए उनको ठीक करने की दृष्टि से पांडुलिपि को डॉ. कुँअर बेचैन जी को दिया गया। यह एक बड़ी ही जटिल समस्या थी, जिसका समाधान डॉ. बेचैन ने बड़ी ही संवेदनशीलता के साथ एक व्यावसायिक काव्य-साधक की तरह किया। उन्होंने उपयुक्त कविताओं का चयन कर एक कुशल कारीगर की तरह सभी हीरों को ठीक से तराशा। 'सूरज की सोलह किरणें' इस प्रक्रिया का प्रतिफल है। आशा है, आप सबको पसंद आएगा।

संक्षेप में गीतांजलि समुदाय विगत तेरह वर्षों से भाषायी समन्वय के आधार पर भारतीयों की सार्वभौमिक एकता एवं अखंडता के लिए कार्यरत रहा है। इसके अंतर्गत समुदाय के दसवीं वर्षगाँठ २००५ में (२७ से २९ अगस्त तक) एक अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का एवं २००६ में (१ से ३ सितंबर तक) तेईसवें अंतरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन का आयोजन किया था। वर्ष

२००३ में एक शाखा नाटिंघम में जय वर्मा के नेतृत्व में खुली। फरवरी २००६ में भारतीय दूतावास लंदन द्वारा यू.के. में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए गीतांजलि समुदाय को प्रथम 'फ्रेडरिक पिंकाट' सम्मान से अलंकृत किया गया। समुदाय के सदस्यों एवं अन्य साहित्य-प्रेमियों के लिए २००७ में दो कार्यशालाओं का आयोजन भी किया गया। जून २००७ में 'नया ज्ञानोदय' के संपादक श्री रवींद्र कालिया एवं श्रीमती ममता कालिया जी को बुलाया गया था, एक बहुभाषीय कथा कार्यशाला के लिए। इस कार्यशाला के बाद अब कथा-रचनाकारों की प्रस्तुति में सुंदर परिवर्तन आना प्रारंभ हो गया। इसी प्रकार १४-१५ अक्तूबर, २००७ को उर्दू-हिंदी कविता कार्यशाला के लिए, जो समुदाय द्वारा नाटिंघम में आयोजित की गई थी, डॉ. कुँअर बेचैन एवं श्रीमती संतोष कुँअर जी को आमंत्रित किया गया था। इस कार्यशाला के फलस्वरूप यू.के. में लोगों ने हाइकु एवं दोहे आदि भी लिखना शुरू किया है। ग़ज़ल के व्याकरण का भी सम्यक् ज्ञान लोगों ने अर्जित किया, जिसके आधार पर अब क़ाफ़िया, रदीफ़, बहरें आदि का सम्यक् ज्ञान और समझ हो जाने के कारण सदस्यों की ग़ज़लों में जो सुधार एवं परिवर्तन आया है, वह इस संकलन में भी नज़र आता है। वर्ष २००७ में ही समुदाय के दो सदस्यों सुश्री स्वर्ण तलवाड़ एवं सुश्री रमा जोशी के हिंदी काव्य-संकलनों का प्रकाशन भी हुआ। अनेक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक आयोजनों के साथ-साथ अब तक समुदाय ने लगभग १५० काव्य-गोष्ठियों एवं बहुभाषीय कवि सम्मेलनों का आयोजन किया है। कथा यू.के. द्वारा सम्मानित साहित्यकारों को 'गीतांजलि' द्वारा सम्मानित करने का कार्य वर्ष २००१ से चलता आया है। गीतांजलि समुदाय ने २००७ में पुणे की डॉ. मालती शर्मा एवं भारत की सुश्री सरोज श्रीवास्तव जी को उनके दीर्घकालीन भाषा-सेवा के लिए शॉल अभिनंदन द्वारा एवं प्रतीक-चिह्न द्वारा सम्मानित किया गया था। वर्ष २००७ के समाप्त होते-होते यह आशा की जाती है कि समुदाय अन्य कई कीर्तिमानों को स्थापित करने में भी सफल होगा।

'सूरज की सोलह किरणें' में सोलह रचनाकारों की हिंदी कविता की लगभग सभी विधाओं में ७७ कविताएँ हैं। गीत, ग़ज़ल और नई कविताओं की बहुलता

है। रचनाकारों ने नए-नए प्रतीकों के माध्यम से अपनी-अपनी बातों को व्यक्त किया है। प्रवासी कवियों की इन कविताओं का मकरंद दूर-दूर तक फैलेगा, ऐसा अनुमान है और यह संकलन कुछ नए संदर्भों को जन्म देगा, ऐसी आशा की जाती है। संकलन की श्रेय गीतांजलि समुदाय के कर्मठ कर्मयोगियों को जाता है, जो विविधता में एकता की एक मिसाल बन चुके हैं। संकलन के सुंदर और सुव्यवस्थित स्वरूप का पूरा श्रेय डॉ. कुँअर बेचैन जी को जाता है, जो सरलता-तरलता का पर्याय बन चुके हैं। अंततोगत्वा संकलन कैसा बन पाया है, इसके अंतिम निर्णायक तो आप सब सुधी पाठक ही हैं, जिन्होंने निरंतर गीतांजलि समुदाय को दुलराते हुए अपना ढेरों प्यार-स्नेह दिया है।

अंत में यह संकलन गीतांजलि को समर्पित है, जो सोलह वर्ष की अल्पायु में ही अपनी कुछ कविताएँ विश्व को देकर इस नश्वर संसार से उठ गई थीं। गीतांजलि की मर्मस्पर्शी कविताओं ने ही समुदाय के सदस्यों को इस संस्था के गठन के लिए प्रेरित किया था। गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय के संस्थापक के रूप में मैं यह आशा करता हूँ कि आप 'सूरज की सोलह किरणें' को आशीर्वाद देते हुए अपनी प्रतिक्रिया अवश्य देंगे। ईश्वर सबकी रक्षा करते हुए भारत की एकता एवं अखंडता को अपना आशीर्वाद देगा, ऐसा मेरा मत है। इस संकलन एवं गीतांजलि के संकल्पों को साकार करवानेवाले सभी महात्माओं को धन्यवाद देता हूँ।

विशेष रूप से भारतीय उच्चायोग लंदन के उच्चायुक्त श्री कमलेश शर्मा जी, मंत्री समन्वय श्री रजत बागची जी एवं हिंदी तथा संस्कृति अधिकारी श्री राकेश बी. दुबे जी का धन्यवाद ज्ञापन करना चाहता हूँ जिनके प्रयासों का प्रतिफल यह संकलन है। बर्मिंघम में भारत के काउंसल जेनरल श्री एन.पी. शर्मा जी का सहयोग भी निरंतर ही मिलता रहा है। मैं उनको भी धन्यवाद देता हूँ।

(डॉ. कृष्ण कुमार)
संस्थापक अध्यक्ष
गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय

२१ बिडफॅर्ड ड्राइव, सेली ओक
बर्मिंघम बी २९ ६क्यू जी,
यू.के.
इ-मेल : profdrkrishna@gmail.com

अनुक्रम

परवेज़ मुज़फ़्फ़र की ग़ज़लें

१.	ग़ज़ल–१	५१
२.	ग़ज़ल–२	५२
३.	ग़ज़ल–३	५३
४.	ग़ज़ल–४	५४
५.	ग़ज़ल–५	५५

मीनू अग्रवाल की कविताएँ

६.	बदल सकते हो अपना प्रारब्ध	५७
७.	एक कहानी पढ़ी थी / सत्–चित्–आनंद	६०
८.	माया–ठगिनी	६२
९.	केले के पत्ते	६३
१०.	हम क्यों करते हैं ऐसा काम	६४

चंचल जैन की कविताएँ

११.	रात का सन्नाटा	६७
१२.	मंज़िल किधर है	६९
१३.	पत्ते	७१
१४.	मूक वाणी	७२
१५.	आबू पर्वत पर सूर्यास्त	७३

अजय त्रिपाठी की कविताएँ

१६.	चुपके–चुपके मौसम बदला	७७
१७.	वह तो हरदम हँसता था	७८
१८.	राजनीति में धर्म का आना	७९
१९.	नफ़रत बोता थक जाएगा	८०

विभा केल की कविताएँ

२०.	अहिल्या	८२
२१.	साक्षी	८४
२२.	गर्वित पराजिता	८५
२३.	फ़ुरसत	८६
२४.	उसी तरह	८७

वंदना मुकेश की कविताएँ

२५.	चिड़िया	९०
२६.	मुक्तक	९२
२७.	मेरे अपने	९३
२८.	हवा	९४
२९.	पीड़ा	९५
३०.	यह बात और है	९६

नरेंद्र ग्रोवर की कविताएँ

३१.	पायल की झनकार बसा दो	९९
३२.	हर पथ सँवरता जा रहा है	१००
३३.	तेरे गीतों में ढलने को	१०१
३४.	कलियाँ चटखीं	१०३
३५.	मेहमान	१०५

पुष्पा राव की कविताएँ

३६.	···शायद उसे नहीं मालूम	१०८
३७.	ख़त	१०९

रमा जोशी की कविताएँ

३८.	पूरे–अधूरे सपने	१११
३९.	प्रश्न–१	११३
४०.	प्रश्न–२	११४
४१.	घर में मग्न	११५
४२.	तुम्हें जल्दी जाना था	११७
४३.	बिखरा दिन	११९

स्वर्ण तलवाड़ की कविताएँ

४४.	गन–कल्चर	१२१
४५.	आवाज़	१२३
४६.	लेना–देना	१२५
४७.	तिथि	१२६
४८.	वृक्षराज	१२७

अरुण सब्बरवाल की कविताएँ

४९.	निराकार प्रियतम	१३०
५०.	आमंत्रण	१३२
५१.	प्रिय तुम्हारी आँखों में	१३३
५२.	आधी रात	१३४
५३.	प्रिये	१३५

जय वर्मा की कविताएँ

५४.	ख़त	१३७
५५.	आशा	१३९
५६.	दूरी क्यों	१४०
५७.	मुक्त	१४२
५८.	नारी	१४३

कृष्ण कन्हैया की कविताएँ

५९.	फितरत	१४६
६०.	हवाएँ	१४७
६१.	संबंध	१४९
६२.	वस्त्र	१५०
६३.	डाँट प्यार की	१५२
६४.	बेल	१५४

कृष्ण कुमार की कविताएँ

६५.	क्यों ढूँढ़ते हो	१५६
६६.	कर्म का उपहार	१५८
६७.	कल काल तो पछताएगा	१६०
६८.	कैसे जगाऊँ	१६२
६९.	चेहरा तेरा	१६४

सर्वेश सैनी की कविताएँ

७०.	इक अहसास	१६७
७१.	गीत	१६९
७२.	दर्द	१७१

कल्पना गवरे की कविताएँ

७३.	तुम तो मेहमान हो	१७४
७४.	गीत	१७६
७५.	एक आवाज़	१७८
७६.	हर साँस में फूलों की ताज़गी	१७९
७७.	तुमसे मिलकर	१८०

श्री परवेज़ मुज़फ़्फ़र

परवेज़ मुज़फ़्फ़र का जन्म भोपाल (म.प्र.) में हुआ था, किंतु अधिकतर समय दिल्ली में बीता, जहाँ से उन्होंने स्नातकोत्तर उपाधियाँ प्राप्त कीं। यू.के. में वे १९९३ से रह रहे हैं। अपने छात्र जीवन से ही परवेज़ कहानियाँ एवं कविताएँ लिखते और छपते रहे हैं।

ग़ज़ल-१

जो पामाल[१] विस्मिल[२] का लाशा करे,
वही आए मेरा तमाशा करे।

नवाज़िश करे काश हम पर कोई,
मुसल्सल करे बे ताहाशा करे।

ख़ुदा ने किया है मुझे सरबुलंद,
अदू[३] मेरे कद को तराशा करे।

मेरी ख़स्ता हाली से आजिज़[४] है वो,
कहाँ तक तराशा ख़राशा करे।

मुहब्बत में इतनी निराशा हुई,
के परवेज़ अब किससे आशा करे।

□

१. पामाल-ग़रीब, २. विस्मिल-ज़ख़्मी, ३. अदू-दुश्मन, ४. आजिज़-परेशान।

ग़ज़ल-२

ख़ुशबू के दीवान बना,
फूलों की पहचान बना।

मिट्टी नम है कुछ तो कर,
बातें मत नादान बना।

दम घुट जाएगा क़ैदी,
अंदर रोशनदान बना।

मौत तुझे भी धर लेगी,
जीने का सामान बना।

अच्छा अब हम चलते हैं,
अब तू अपनी शान बना।

□

ग़ज़ल-३

हमारी जीत का ऐलान करना चाहता है,
ज़माना शहर को हलकान[१] करना चाहता है।

मिला चुका है दीया आँख चढ़ते सूरज से,
अब आँधियों को परेशान करना चाहता है।

सुना है दोस्ती सौदाइयों[२] से है उसकी,
तो क्या वो शहर को वीरान करना चाहता है।

बहुत क़रीब है तलवार उसकी गरदन से,
वो अपने दोस्त को सुलतान करना चाहता है।

तुझे ख़बर भी है परवेज़ तेरा साया ही,
तेरे वजूद का नुकसान करना चाहता है।

□

१. हलकान-परेशान, थकाना, २. सौदाइयों-दीवाने, पागल।

ग़ज़ल-४

ख़ंजर खाने पड़ते हैं,
घाव छुपाने पड़ते हैं।

दुश्मन बन जाते हैं ख़ुद,
दोस्त बनाने पड़ते हैं।

सच क्या सादा पानी है,
रंग मिलाने पड़ते हैं।

पाँच घरों की बस्ती में,
दस वीराने पड़ते हैं।

अक्सर गीत मुहब्बत के,
रोकर गाने पड़ते हैं।

कुछ फूलों को पलकों से,
ख़ार उठाने पड़ते हैं।

शैरों से दिल में परवेज़,
ताने बाने पड़ते हैं।

□

ग़ज़ल-९

ज़ोर लगाकर हय्या रे,
रेती में है नय्या रे!

बापू हो या माता हो,
सबसे बड़ा रुपय्या रे!

आस्माँ कुछ दूर नहीं,
हाथ बढ़ाना भय्या रे!

इतनी नदियाँ इतने खेत,
भूखी भारत मय्या रे!

पानी आग लगाता है,
अब क्या होगा दय्या रे!

तिल-तिल काटी जाएगी,
बाबुल तेरी गय्या रे!

□

सुश्री मीनू अग्रवाल

मीनू अग्रवाल का जन्म एवं स्नातकोत्तर शिक्षाएँ इलाहाबाद (उ.प्र.) में ही हुई थीं। १९६५ से वे निरंतर यू.के. में रह रही हैं। गीतांजलि समुदाय में सम्मिलित होने के बाद काव्य-साधना का रुख़ बदला है।

बदल सकते हो अपना प्रारब्ध

बाइबिल में कहा गया है
'एज यू सो, सो यू शेल रीप'
हम हिंदू कहते हैं कि
हम भोगते हैं अपने पूर्व जन्मों का फल
यह प्रारब्ध नहीं है
किसी अनजान शक्ति की उँगलियों से लिया हुआ यह प्रारब्ध
नतीजा है हमारे बीते हुए कामों का
बीते हुए विचारों का
बीती हुई भावनाओं का।

हमारे आदि ग्रंथ वेद दृढ़ता के साथ कहते हैं
पुराने कर्मों का फल तो मिलेगा ही
अच्छे कर्मों का सुखदाई और बुरे कर्मों का दुःखदाई
पुराने प्रारब्ध में लिखी आनेवाली घटनाओं को भी
झेलना होगा अवश्य ही
वर्तमान प्रयत्नों से बदला जा सकता है
या कहो बनाया जा सकता है
बस आनेवाला नया प्रारब्ध
काश हमारे पास 'टाइम मशीन' होती
हम वापिस जाते और आनेवाले वर्तमान को बदल सकते!

परंतु कुछ धर्म के दावेदार कहते हैं
कि प्रारब्ध बदला जा सकता है
बिना 'टाइम मशीन' के आविष्कार के
ईसाई चर्चों में बिकती थी स्वर्ग में जगह
चर्च में अन्य और भी उपाय हैं
अपने पाप दूर करने के लिए
अपना हिंदू धर्म भी नहीं है पीछे
पूजा-पाठ द्वारा देवी-देवताओं को ख़ुश किया जाता है
ग्रहों की शांति होती है
गंगा-स्नान से तो सभी पाप धुल जाते हैं
आजकल के बुद्धिजीवियों को यह सब
लगता है ढोंग व धोखा।

दूसरी ओर जब इंसान
निराशा और दु:ख के दरिया में झिंझोड़े लेता होता है
बहुत क्रूर लगता है उसको यह समझाना
कि यह तुम्हारा ही दोष है।

मानती हूँ मैं कि बग़ैर 'टाइम मशीन' के
बदले नहीं जा सकते बीते हुए दिन
परंतु प्रारब्ध पर पूर्ण विश्वास क्या निराशावाद नहीं है
परमात्मा जो सर्वशक्तिमान है
वह कैसे छोड़ सकता है इंसान को
अपनी संतान को
इस तरह अपने बीते हुए कर्मों के फल भोगने को।

वास्तविकता तो यह है
कि हम घिरे हुए हैं अपनी कमज़ोर विचारधारा में

दबे हुए हैं संसार की दैनिक ज़िम्मेदारियों से
घूमते रहते हैं कोल्हू की बैल की तरह
खो बैठे हैं अपना आत्मविश्वास आत्मबल
खो बैठे हैं विश्वास अपने परमपिता पर!

उस परमपिता की यह सृष्टि तो है
कंप्यूटर के गेम की सी.डी. की तरह
हर इंसान के लिए हैं सब संभावनाएँ
कोई नियमित नतीज़ा नहीं है
हम बार-बार गिरकर भी खेल सकते हैं
आगे बढ़ सकते हैं
तुरंत ही बदल सकते हैं अपना प्रारब्ध
चाहिए हमें आत्मविश्वास, आत्मबल और विश्वास
अपने परम पिता पर।

□

एक कहानी पढ़ी थी

एक कहानी पढ़ी थी
कि एक इंसान को दो झोले दिए गए
एक झोले में थीं उसकी अपनी ग़लतियाँ
और दूसरे में थीं उसके पड़ोसी की
कहा गया उससे कि वह देखे
केवल अपनी ही गलतियों वाला झोला
परंतु उसने झाँका सिर्फ़ पड़ोसी के ही झोले में
हम सभी यही करते हैं
सिर्फ़ यही नहीं
देखकर दूसरों की कमियाँ हँसते हैं ख़ुश होते हैं।

इन झोलों में दिखती है हमें एक और चीज़ भी
ज़िंदगी के मोड़
जिन्हें हम नाम देते हैं सफलता या असफलता का
घड़ी-दो घड़ी के लिए
अपनी सफलता पर ख़ुश हो लेते हैं
फिर कोई और खिलौना दिख जाता है
और उसे पाने के लिए हो जाते हैं बेचैन
हर तरह की सफलता चाहिए हमें।

भीतर-ही-भीतर हम सब दु:खी हैं
घुटते हैं अपनी असफलताओं पर
जलते हैं दूसरों की सफलता पर
हम देखते हैं उनकी कमियाँ कमज़ोरियाँ
और फिर
हँसते नहीं
बल्कि लड़ते हैं अपने भगवान् से
हमारे पड़ोसी को क्यों मिली यह सफलता
हम क्यों अभी भी यह पाने के लिए तरस रहे हैं
उसमें देखो
हैं कितनी कमियाँ
फिर भी वह कैसे निकल गया आगे एक दौड़ में हमसे
हमें ही होना चाहिए हर दौड़ में पहले नंबर पर
हमारी कमज़ोरियाँ, वह तो मामूली सी बात है
भई हम तो ऐसे हैं ही
क्यों नहीं समझते और बरदाश्त करते हमारे पड़ोसी
और हमारे साथी। □

सत्-चित्-आनंद

तुम तो सत्-चित्-आनंद हो।
हम ढूँढ़ते हैं यह आनंद इस जगत् में
ग़लती क्या है हमारी
यह सब कुछ तुम्हारा ही तो बनाया हुआ है
तुम जो आनंदरूप हो।
परंतु इस क्षणभंगुर जगत् का आनंद भी है एक क्षण का ही
वह भी खिसकता जाता है आगे और आगे
हम भागते हैं अपनी कल्पित आकांक्षाओं के पीछे-पीछे
हम कमज़ोर इंसान आनंद की लालसा में
खो देते हैं अपना सत् और चित् दोनों ही। □

माया-ठगिनी

कबीर ने लिखा है—'माया ठगिनी खूब नचाए'
हम नाचते हैं
कभी हँसते हैं कभी रोते हैं
उम्मीदों पर जीते हैं।

अक्सर उम्मीद केवल सपना नहीं रहतीं
कितने ख़ुश होते हैं हम जब नया मोड़ आता है ज़िंदगी में
गर्व होता है हमें अपने पर और अपने भाग्य पर
जब साकार होता है हमारा सपना।

पर फिर वह मोड़ जीवन का अंग बन जाता है
और एक बच्चे की तरह
हम नए खिलौने के लिए मचलते हैं
और माया
अपना जाल बिछाए हमें नचा-नचाकर
शायद मुसकराती है।

□

केले के पत्ते

एक समय
जब संसार के दरिया में नए लोग मिले
और जब कभी-कभी
उनकी कही कोई बात चुभती थी
तो मुझे बचपन में स्कूल में पढ़ा हुआ
कबीर का दोहा याद आता था
कि बेर और केले जब साथ-साथ होते हैं
तो हमारे जैसे लहराते हुए केले के पत्ते
फटेंगे ही
समय बीता तो अब हम हैरान हैं
क्योंकि अब हम दूसरे केले के पत्तों के लिए
बन गए हैं बेर की झाड़ियाँ
और हम चीरते हैं
दूसरों के मन को!

□

हम क्यों करते हैं ऐसा काम

हम क्यों करते हैं ऐसा काम
जिसको करके हम पछताते हैं
हम इंसान जो बुद्धिमान् हैं
क्यों खो बैठते हैं अपनी बुद्धि
क्यों होती हैं हमारी कामनाएँ इतनी प्रबल
कि उनको पूरी करने के लिए
औरों को ही नहीं
हम अपने आपको भी देते हैं धोखा
क्षणमात्र की इच्छा तृप्ति के लिए
हम भूल जाते हैं
अपने किए हुए का भविष्य पर प्रभाव
जो कितने ही और इंसानों को भी घसीटता है
और डुबोता है ज़िंदगी की नदी के भँवर में।

हम इतने डूबे होते हैं अपने अहं में
कि हमें कोई पछतावा है ही नहीं
हम अंधे हो जाते हैं दूसरों की भावनाओं को देखने के लिए
दिखाई ही नहीं देते उनके आँसू
हो जाते हैं अपने स्वार्थ में इतने बहरे
कि सुनाई नहीं देता उनका गिड़गिड़ाना
बंद कर लेते हैं हम अपने कान

अपने द्वारा दलित व्यक्ति की चीखों के लिए।

क्या हम अपने को सर्वशक्तिमान समझते हैं
कि हमारी कामनाएँ और हमारी अभिलाषाएँ ही सर्वोपरि हैं
या तो हम सोचते हैं कि है ही नहीं परमात्मा
या यह कि हम उसके विशेष प्रतिनिधि हैं
और दूसरों को रौंदना
अधिकार है हमारा।

□

सुश्री चंचल जैन

चंचल जैन का जन्म पंजाब में हुआ था, जहाँ उन्होंने अपनी अधिकतर शिक्षा प्राप्त की। १९६६ में बर्मिंघम (यू.के.) आने के बाद १९७८ में उन्होंने बर्मिंघम विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त की। शिक्षक होने के साथ उन्होंने यू.के. में अन्य अनेक क्षेत्रों में भी काम किया है। विद्यालय जीवन से वे कविताएँ लिखती एवं मंचों पर पढ़ती रही हैं। गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय में २००१ में आने के बाद चंचल की रचनाओं में आमूल परिवर्तन आया है। भारतीय महिला क्लब की सचिव चंचल की रचनाएँ समय-समय पर यू.के. एवं भारत की गगनांचल जैसी पत्रिकाओं में छपती रही हैं। यू.के. की कवयित्रियों की बहुभाषी कविताओं का संकलन 'अँजली' को २००७ में संपादित किया।

रात का सन्नाटा

रात के सन्नाटे में
जेल की सलाखों के पीछे
पड़ा हुआ क़ैदी
कहीं दूर
एक नल से टिप-टिप करते
पानी की बूँदों की आवाज़ सुन रहा है
एक-एक बूँद को
गिन रहा है।

रात के सन्नाटे में
क़ैदी अपना अकेलापन,
सूनापन और खोखलापन
महसूस कर रहा है,
और
टिप-टिप करती बूँदों की तरह
अपनी वीरान ज़िंदगी के
धीरे-धीरे गुज़रनेवाले
चंद एक लमहे गिन रहा है।

जेल की सलाखों के पीछे

पड़े हुए क़ैदी को
नींद तो आती ही नहीं
वक़्त तो कटता नहीं
रात भी गुज़रती नहीं
नींद आएगी या नहीं
यह भी नहीं मालूम।

टिक-टिक करती घड़ी की तरह
टिप-टिप करती बूँदों की तरह
जेल की सलाखों के पीछे पड़े
इस बदकिस्मत क़ैदी की ज़िंदगी
क्या यूँ ही बरबाद हो जाएगी?
क्या यूँ ही ख़त्म हो जाएगी
इस रात के सन्नाटे में?

□

मंज़िल किधर है

एक क़दम और
मंज़िल की ओर
चली जा रही हूँ
एक क़दम और।

हँसते-रोते, रुकते-रुकते
कभी धीरे, कभी तेज
मंज़िल की ओर
चली जा रही हूँ
एक क़दम और।

वो देखो, मंज़िल नज़र आ गई
वो देखो, मंज़िल करीब आ गई
क़रीब से देखा, तो घबरा गई
सहमी हुई, मैं डर सी गई।

ख़्वाबों की मंज़िल
हक़ीक़त नहीं है
हक़ीक़त की मंज़िल
भयानक बहुत है।

एक क़दम और
न चल पा रही हूँ
थकावट है इतनी
कि थम सी गई हूँ।

क्या आगे बढ़ूँ
या लौट जाऊँ मैं
हिम्मत खो चुकी हूँ
किधर जाऊँ मैं?

पत्ते

बहारों के पत्ते
या जीवन के पत्ते
        बहारों की दुनिया के
        कोमल ये पत्ते
हवाओं के झोंकों से
उड़ते ये पत्ते
        ख़िजाओं के दामन को
        छूते ये पत्ते
बेसबरी से गिरते
बेख़बरी से गिरते
        यहाँ पर यह गिरते
        वहाँ पर यह गिरते
बाग़ों में गिरते हैं
महलों में गिरते
        वीरानों में उड़ते
        गिरते ये पत्ते
बहारों से कह दो
सँभालो ये पत्ते
        मर तो गए हैं
        जला दो ये पत्ते
या धरती को खोदो
दबा दो ये पत्ते।

□

मूक वाणी

मूक वाणी के वचन मैं
सोचकर भी कह न पाई
मौन पीड़ा की व्यथा मैं
सहती रही, पर कह न पाई।

नियति के नियमों की सीमा
से उलझना जब भी चाहा
ढाल बन, पाषाण बन
पल-पल डराती ही रही।

समय के संघर्ष में
जीवन जुटा, जीवन लुटा
नियति के नियमों से डर
संताप मैं सहती रही।

प्यार का आँचल पकड़कर
अतृप्त मन की आस लेकर
नियति से ठोकर मैं खाकर
वेदना सहती रही।

मौन पीड़ा की व्यथा मैं
सहती रही, पर कह न पाई।

□

आबू पर्वत पर सूर्यास्त

जनवरी का महीना
संध्या का समय
आबू पर्वत की चोटी पर
संगमरमर से बने
दिलवाड़ा मंदिर के उस पार
चलो चलें उस चोटी पर
जहाँ सूर्य देवता
अपनी विश्राम-यात्रा
प्रारंभ करने जा रहे हैं।

चलो चलें
चोटी के उस पार
देखें, अनुभव करें
कि कैसे सूर्य देवता
अपनी प्रज्वलित किरणों की रोशनी
धीरे-धीरे खो देते हैं।

कैसे सूर्य देवता का
आग के अंगारे जैसा गोल-गोल चेहरा
धीरे-धीरे नीचे

गहरी वादियों में
छिप जाता है।

सूर्यास्त स्थल पर
कभी बैठे, कभी खड़े
हम प्रतीक्षा करते रहे
शीतल पवन के झोंकों से
हम ठिठुरते रहे
सूर्य देवता के
अंतिम प्रस्थान के लिए
सूर्य देवता को
अंतिम नमस्कार करने के लिए।
इतने में
आबू पर्वत पर प्रचलित
शीतल पवन के झोंकों से
मँडराती हुई
वादियों में छाती हुई
सफ़ेद रुई जैसी
चादर ओढ़े धुंध
हमारी इच्छाओं को भी
धुँधला गई।

सूर्य देवता अस्त होते-होते
आग जैसा लाल गोला न बन पाए
धुँधली वादियों में
एक छोटा सा
चमकता हुआ बिंदु बन
अपनी विश्राम-यात्रा की ओर

प्रचलित हो गए।

सोचा,
फिर आएँगे कभी सूर्यास्त स्थल पर
जब न होगी धुंध
न शीतल पवन का प्रहार
और हम देख पाएँगे
सूर्य देवता को
आबू पर्वत के उस पार
अंतिम प्रस्थान करते।···

···और तब समझ सकेंगे
उसके लाल-लाल
गोल-गोल चेहरे का आकर्षण
फिर आएँगे सूर्यास्त स्थल पर
मई-जून के महीने में।

□

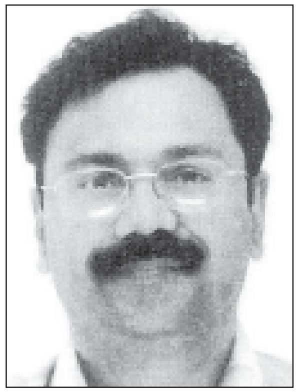

डॉ. अजय त्रिपाठी

अजय त्रिपाठी का जन्म दिल्ली में हुआ था, जहाँ उन्होंने प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की थी। रोहतक मेडिकल कॉलेज से आप्थोमालॉजी में एम.बी.बी.एस. तथा एम.एस. डिग्री प्राप्त करने के उपरांत उन्होंने एडिनबरा एवं ग्लासगों के र्‌वायल कॉलेज ऑफ सर्जन से एफ.आर.सी.एस. की स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की। सन्‌ १९९९ से वे यू.के. के विभिन्न क्षेत्रों में नेत्र सर्जन की हैसियत से कार्यरत हैं। डॉ. त्रिपाठी ने विभिन्न अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में अपने विषय पर आलेख पढ़ने के साथ-साथ पत्रिकाओं में भी इनके आलेख छपते रहे हैं। लगभग १६ वर्ष पूर्व इन्होंने अपने छात्र जीवन में ही हिंदी में कविताएँ लिखना प्रारंभ कर दिया था। इनकी कुछ कविताएँ 'वागर्थ' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में छप चुकी हैं। गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय में आने के बाद इनकी रचनात्मकता में खूब निखार आया है। यू.के. एवं भारत के प्रतिष्ठित मंचों पर इन्होंने अपनी कविताओं का पाठ किया है। अजय जी एक सफल संचालक एवं अच्छे गायक भी हैं।

चुपके-चुपके मौसम बदला

घटनाओं का जब क्रम बदला,
चुपके-चुपके मौसम बदला।

आँसू की बरसात हुई तो,
ख़ुशियों का हर अलबम बदला।

ऐसे दौर में आ बैठे हैं,
ज़ख़्म भी बदले मरहम बदला।

दुख के बाद भी दुख आया है,
घटनाओं का भी क्रम बदला।

देख न पाए उसको हम ही,
जीवन तो यह हरदम बदला।

बदली अपनी दुनिया सारी,
हम भी बदले, हमदम बदला।

□

वह तो हरदम हँसता था

वह तो हरदम हँसता था,
सहकर हर ग़म हँसता था।

दु:ख का हो या सुख का हो,
वो हर मौसम हँसता था।

फूलों की पाँखुरियों पर,
बनकर शबनम हँसता था।

ख़ुद पर ख़ूब ठहाके थे,
औरों पर कम हँसता था।

सबके घावों पर हर पल,
बनकर मरहम हँसता था।

बारिश की बूँदों में वो,
बनकर छम-छम हँसता था।

रोता था भीतर-भीतर,
सबको था भ्रम, हँसता था।

□

राजनीति में धर्म का आना

दिल का क्या है ठौर-ठिकाना ठीक नहीं,
यूँ ही दरिया में बह जाना ठीक नहीं।

आए हो तो साथ रहो हरदम मेरे,
मेहमानों-सा आना-जाना ठीक नहीं।

एक इरादा एक लगन आवश्यक है,
रुक-रुककर यूँ क़दम बढ़ाना ठीक नहीं।

बोलो उतना ही जितना तुम कर पाओ,
सबको झूठे ख़्वाब दिखाना ठीक नहीं।

वैसे तो सबकुछ चलता है दुनिया में,
राजनीति में धर्म का आना ठीक नहीं।

□

नफ़रत बोता थक जाएगा

औरों के दुःख में रोया कर,
कभी-कभी भूखा सोया कर।

ग़ैरों के ग़म की ख़ातिर तू,
अपनी कुछ ख़ुशियाँ खोया कर।

कभी दोपहरी में चलकर तू,
औरों का बोझा ढोया कर।

दिल पर जितना मैल चढ़ा है,
उसको आँसू से धोया कर।

नफ़रत बोता थक जाएगा,
बीज प्यार के भी बोया कर।

□

सुश्री विभा केल

विभा केल का जन्म पंजाब में हुआ था, जहाँ उन्होंने प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की थी। वेस्ट मिडलैंड में बसी विभा अकादमिक होते हुए अध्यापिका रही हैं। अनेक स्वैच्छिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं से आप जुड़ी हैं। अपने स्कूल के दिनों से ही ये हिंदी एवं अंग्रेजी में कविताएँ लिखती रही हैं। गीतांजलि समुदाय में सम्मिलित होने के बाद पंजाबी में भी लिखने का प्रोत्साहन एवं प्रेरणा मिली है।

अहिल्या

सदियों पहले
पाषाण–अहिल्या को दिया गया था पुन: स्त्रीत्व
क्या इसलिए
कि फिर कोई इंद्र ललचाए?
या फिर कोई गौतम उसे ठुकराए?
या अनिधकृत ग्लानि से ग्रस्त
भूस्खलन की धूलि–सी मिट जाए!

क्यों वज्र–संकल्प को दी गईं भावों की कोमलता?
क्यों भूले
हर युग के गौतम की संकीर्णता?

ओ वैष्णवी के प्रिय!
सीता के एक पत्नीव्रतधारी!
तुमने भी शायद भोगी हो अंतर्द्वंद्व की भीषणता!
लेकिन कर सको पुनरुत्थान
तुम में भी नहीं है वो क्षमता!

तुमने तो बस चाहा होगा
देकर स्पर्श मर्म को

मिल जाए देवत्व
तभी तो
दे डाला पाषाण को स्त्रीत्व
और
भर दिया हृदय में ममत्व।

□

साक्षी

स्मित मुसकान की नींव में,
उपेक्षित सपनों का बिखराव लिये,
व्यथित अभिलाषाओं पर,
समझौते का आँचल ओढ़े।
आहत तमन्नाओं के श्रद्धा-स्तूप तले,
अपमानित गर्व की दलदल लिये,
विक्षिप्त प्रणय पर,
तटस्थता का भाव ओढ़े मैं॥

अस्तित्व में शून्यता की पहचान-जैसी,
दया के पात्र-सी,
विकल्प के क्षण झेल पाई,
इसलिए नहीं कि संज्ञा-विहीन था स्वाभिमान।
पर,
सह पाई, शायद इसलिए
कि तुम साक्षी थे।

□

गर्वित पराजिता

जलकर दीये की लौ-सी,
तेरे मन-मंदिर में समाना चाहा!
पल-दो पल के लिए शायद
तूने भी धरा से उठाना चाहा!
यह क्षणिक सम्मान
तड़पकर लौ' ने अपनाना चाहा!

पर
हाय! बाती का गर्व
मंदिर से पावन भाव बिना
जल-जलकर मर जाना चाहा!

पाकर क्षणिक सम्मान
न हो पराजित गर्व मेरा
इसीलिए तो
शाश्वत जल रही गर्वित पराजिता!!

□

फ़ुरसत

अब मिली है फ़ुरसत फ़र्जों से, आओ ख़्वाबों को आवाज़ तो दें।

जो बन के रह गए हसरतें, उन ख़यालों को इक साज़ तो दें,
सोज़ के साज़ की धूल पोंछ, उन साज़ों को आवाज़ तो दें,
अब मिली है फ़ुरसत फर्जों से, आओ ख़्वाबों को आवाज़ तो दें।

जब ख़्वाब ही ख़्वाब थे आँखों में, कोई उड़न-खटोला हाथ न था,
जब पाई ताक़त उड़ने की, तो ख़्वाबोंवाला साथ न था,
अब पर भी हैं, परवाज़ भी है, कहीं धुँधला-सा इक ख़्वाब भी है,
चलो हटाएँ वक़्त का कोहरा, इक-दूजे को मन का राज़ तो दें।

अब मिली है फ़ुरसत फ़र्जों से, आओ ख़्वाबों को आवाज़ तो दें॥

□

उसी तरह

ज़िंदगी गुज़रती जा रही है तुम्हारे बिना भी।
तुम्हारे बिना भी,
दिन उसी तरह उगता है, ढलता है;
फूल खिलते हैं, पक्षी चहकते हैं।
दिन महीने साल गुजरते जाते हैं॥
उसी तरह
सड़कों पर कारें, बाजारों में भीड़।
टी.वी. पर पोलिटिक्स, मर्डर की खबरें,
काम पर जाते, काम से आते लोग,
सब कुछ उसी तरह लगता है॥

उसी तरह
मेरे बगीचे में छिपी चिड़िया, मधुर गाना गाती है।
और···
मेरे आँगन की ओर फैली पड़ोसी की बेल
मेरी नज़रों को लुभाती है।
सब कुछ
उसी तरह लगता है।
पर

कुछ तो बदला है—
अब मेरे अंदर वोह बेवज़ह हँसी नहीं खनकती।
कहीं एक कसक एक खालीपन
मुझे उदास-सा कर देता है
मुझे यह एहसास दिलाता है
कि
दुनिया के मानचित्र में
हम चाहे इक बिंदु भी न सही
पर
इक दूजे का जीवन ऐसी इकाई है
जिसकी कमी किसी तौर भी भर नहीं पाती
हाँ, ज़िंदगी गुज़रती जा रही है तुम्हारे बिना भी॥

□

डॉ. वंदना मुकेश

वंदना मुकेश का जन्म भारत में हुआ था, जहाँ उन्होंने अपनी पूरी शिक्षा प्राप्त करने के साथ यू.के. में भी उच्च स्तरीय शिक्षा प्राप्त की। पिछले पाँच वर्षों से वे परिवार सहित यू.के. में रह रही हैं। भारतीय भाषा में विशिष्ट योगदान के लिए वंदना को अनेक सम्मान प्राप्त हो चुके हैं। वे मराठी, हिंदी एवं अंग्रेजी भाषा में दक्ष हैं। वे कला के विभिन्न आयामों में दक्ष हैं। यू.के. एवं भारत की पत्रिकाओं में वंदना की हिंदी कविताएँ प्रकाशित होती रहती हैं। आई.एम.एस. २००५ की मुख्य सचिव के रूप में वंदना ने बहुत महत्त्वपूर्ण काम किया था। मई २००४ से वंदना गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय की सक्रिय सदस्या हैं।

चिड़िया

इंग्लैंड के मेरे घर में,
आकाश में उड़ता,
चिड़ियों का कुटुंब,
जब मेरे आँगन में उतर आता है,
तब
मेरे बचपन का घर,
मुझे बहुत याद आता है।

याद आते हैं, आँगन के कोने में,
पूजा करते ध्यानमग्न बाबा,
और कभी रामायण पढ़ते,
फूट-फूटकर रोते बाबा।

अचानक देखती हूँ—
वह चिड़ा फुदक-फुदककर सबके पास जाता है,
तुम निर्भय चुगो, कुछ ऐसी ही आस देता है।

सहसा गमक जाता है मेरा आँगन,
माँ के हाथ की गरम-गरम—
चूल्हे पर सिंकती,

गोल-गोल रोटियों की महक से।

और उधर
शायद वह काली चिड़िया,
जो उस नन्हे परिंदें की माँ है,
बार-बार नेह से चोंच लड़ा लेती है।
हाँ,
उसकी आँखों में भी माँ की गरिमा नज़र आती है।

जीजी का दौड़ना,
भैया का पकड़ना,
आँगन से छत पर,
छत से आँगन में,
चढ़ना-उतरना, कूदना-भागना,
उनका ज़ोर से खिलखिलाना,
यकायक
चिड़ियों की चहकार में बदल गया है,
ऐसा लगता है मेरे बचपन का घर,
मेरे आँगन में उतर आया है···
उतर आया है, मेरे आँगन में!

□

मुक्तक

काठ हुई
संवेदना जिनकी
वे ही तो ठूँठ हुए
पत्ते अपने आप ही
छूट गए!

स्नेह के जिस सागर में
वर्षों नहाए हम
आज वे ग्लेशियर बन गए हैं
कैसी ग्लोबल वार्मिंग है ये
कि कलेजे पत्थर हो गए हैं।

□

मेरे अपने

सहेजे सहजता को बंद बक्से में
हँसी पर लगा के ताला
भीतर से खौलते
बोलों को तौलते
मुसकराहटें ओढ़े हुए
कैसे जोश से
मिलते हैं गले
मेरे अपने, मेरे कितने अपने!

□

हवा

काश! बन जाती मैं हवा
देह, घर, परिवार
समाज, गाँव, शहर
कभी भी, किसी का,
बरपता न कोई कहर।

घूमती वन-प्रांतर
नापती नदी-झरने
विचरती
मुक्तआकाश में
इंसानी दायरों से दूर।
बहुत दूर
बहुत ही दूर···।

□

पीड़ा

पुराने बरगद में भी,
इक नई चाह पैदा हुई,
तब नई पौध,
जड़ सहित नई जगह रोपी गई।

शाखाओं का रूप बदला,
चाल बदली, रंग बदला,
और फिर,
नस्ल ही बदल गई,
अफ़सोस,
अब न वे बरगद की संतान हैं।
न ही उनकी अपनी कोई
पहचान है।

□

यह बात और है

छोड़ा अपना देश,
न छोड़ी संस्कृति और परंपरा।
तभी तो साथ ले आए अपने,
रावण और मंथरा!

'वीकेंड' पर उड़ाते, कमाते जो पाउंड में,
भूल जाते 'आइडेंटिटी' अपनी, व्हिस्की के राउंड में।

अपनाया पहनावा इनका और मतलबी मिज़ाज,
आने से अचानक किसी के होती अब तबीयत नाराज,
दिखावा पाखंड औ' आडंबरों की अर्गला,
न छोड़ी संस्कृति और न ही परंपरा।

यह बात और है,
कि न बने छड़ी पिता की,
न ही माँ की ऐनक*,
किंतु,
जायदाद में पिता की,
माँगते हैं बराबर का हक,

* इस कविता की प्रेरणा डॉ. पद्‌मेश गुप्त की 'घड़ी-घड़ी' और ऐनक से मिली है।

शर्मा की 'डॉटर' और वर्मा का 'सन'
लेटेस्ट खबरों बिना बेचैन होता मन।

संस्कृति प्रेम का अनूठा जतन,
नए समाज का यही है चलन।

□

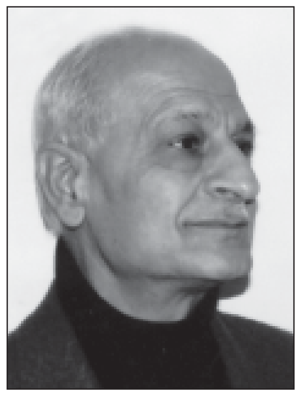

श्री नरेंद्र ग्रोवर

नरेंद्र ग्रोवर का जन्म लाहौर (अब पाकिस्तान) में हुआ था और इनकी शिक्षा भारत तथा यू.के. में हुई। सत्रह साल की आयु से वे हिंदुस्तानी में कविता लिखते रहे हैं। इनकी रचनाएँ भारत और यू.के. में छपती रही हैं। बहुत वर्षों के बाद गीतांजलि समुदाय में सम्मिलित होने के बाद नरेंद्र ग्रोवर ने पुनः कविताएँ लिखना प्रारंभ किया है। नरेंद्र कला की अन्य विधाओं में भी पारंगत हैं।

पायल की झनकार बसा दो

तुम हँस-हँस पिया दीप जला दो,
राह अँधेरी आज किसी की,
नीरस गीतों के आँगन में,
पायल की झनकार बसा दो!

बन बिरहन सावन की बदली,
छम-छम नीर बहाती पगली,
दूर है मंज़िल आज किसी की,
तुम साची बन राह दिखा दो!

हर पग पर उठते हैं तूफ़ाँ,
हर पग पर मावस की बदली,
शशि से लेकर ज्योति स्वयं तुम,
बुझते दीपक आज जला दो!

शलभ बने दीपक के साथी,
लेकिन सूनी माँग किसी की,
तुम बनकर सिंदूर प्रीत का,
माँग किसी की आज सजा दो!

□

हर पथ सँवरता जा रहा है

कौन मेरे मूक से प्राणों में ढलता जा रहा है,
कौन मेरी साँस बन साँसों में घुलता जा रहा है,
जाने किन अनजान राहों पर मैं बढ़ती जा रही हूँ,
कौन मेरी माँग में सिंदूर भरता जा रहा है।

कौन हो, क्या हो, कहो किस नाम से तुमको पुकारूँ,
क्या तुम्हीं हो वेदना के गान में जिसको उतारूँ,
दूर रहकर भी हृदय के पास कितने हो गए हो,
कौन है जो गीत में मेरे उतरता जा रहा है।

बहुत रोका पर मेरी हर साँस ने तुमको पुकारा,
बहुत रोका बह गई नयनों से मेरे अश्रु-धारा,
जलते-जलते प्रीत की लौ सिसकियों में ढल रही थी,
कौन, जिसकी ज्योति से हर पथ सँवरता जा रहा है।

□

तेरे गीतों में ढलने को

माँग न भर पाए तो क्या,
पर भावों का संसार दिया।
मेरे नीरस जीवन को,
इन सपनों का उपहार दिया॥

इस डर के हाथों से बंधित,
मैं मज़बूर चली आई,
बाँहों में अपने प्रियतम के,
झूम-झूम, मैं मुसकाई।

तेरे नयनों की मदिरा से,
पी मैंने जीवन-हाला,
कण-कण में फिर जाग उठी है,
भावों की तपती ज्वाला।

पग-पग पर जीवन के आई,
यादों की प्रिय पुरवाई,
चुन-चुन आशा के फूलों को,
तेरे द्वार चली आई।

तुमने अपनाकर फिर मुझको
एक अनोखा दान दिया,
गूँज उठी हर सू शहनाई,
ऐसा तूने गान दिया।

मेरे अधरों को छू-छूकर,
श्यामलता भी मुसकाई,
तेरे गीतों में ढलने को,
मैं फिर आज चली आई।

□

कलियाँ चटखीं

तुम आए मेरे आँगन में,
कलियाँ चटखीं,
कुछ फूल खिले,
ख़ुशबू महकी,
भावों की सरिता बह निकली!

फिर श्वासों में झंकार उठी
सूने दिल की इस बगिया में,
पुरवाई ने सरगम छेड़े,
कुछ गीत हवाओं में गूँजे,
और झरनों में झंकार उठी!

चंदा ने फैला किरणों को
बाँहों में बाँध लिया मुझको,
और मैं तुझमें
फिर लीन हो गई!

दूर गगन पर शोर हुआ,
बदली फैली, बिजली चमकी,
छुपा लिया,

निज आँचल में,
प्यारे से मेरे चंदा को,
और न जाने,
किन अँधियारों मैं ख़ुद फिर से,
डूब गई!

फूल भी मुरझाए बगिया में
सावन भी मुँह फेर गया,
दिल में यह कैसी चुभन हुई
मेरा जीवन फिर बिखर गया।

मैं खड़ी ड्योढ़ी में तकती
इस टूटे दिल में आस लिये
तुम लौट कभी तो आओगे
मन में पावन विश्वास लिये।

तुम आओगे इस आँगन में
आशा के दीप जलाएँगे,
फिर से चटखेंगी ये कलियाँ
फिर से भँवरे मुसकाएँगे,
फिर से सावन की बाँहों में
झूम-झूम खो जाएँगे।

□

मेहमान

दरवाज़ा खटखटाने से अब कुछ नहीं होगा
वो लोग आप जिनको ढूँढ़ते हैं
अब यहाँ नहीं रहते
एक मुद्दत से यह घर खाली है।

जाते-जाते हमने पूछा,
वापिस कब लौटोगे?
लब हिले मगर आवाज़ न थी।

उसके बाद एक सन्नाटा था,
बहुत लंबा सन्नाटा।

हाँ, दूर बहुत दूर
किसी के पाँव की आहट सुनाई दे रही थी।

इक फूल खिला-सा रह गया है,
और अँधेरा फैलता जा रहा है।

वक़्त ज़िंदगी को बड़ी तेजी से,
लिये जाता है उस तरफ़
जहाँ ज़मीन-आसमान

एक हो जाते हैं
जहाँ ज़िंदगी–मौत,
दु:ख–सुख का
कोई भरम नहीं रहता
बस एक अनथक
ख़ामोशी ही नज़र आती है।

दरवाज़ा खटखटाने से
अब कुछ नहीं होगा
वो लोग,
जिनको आप ढूँढ़ते हैं
अब यहाँ नहीं रहते।

□

सुश्री पुष्पा राव

पुष्पा राव का जन्म नागपुर (महाराष्ट्र) में हुआ था। पुष्पा जी की मातृभाषा तेलुगू है। आंध्र प्रदेश से पुष्पा जी ने बी.ए. की उपाधि प्राप्त की। पुष्पा जी २० वर्षों तक बी.बी.सी. रेडियो नार्टिंघम की उद्घोषिका एवं हिंदी की अध्यापिका भी रही हैं। बच्चों की कई पुस्तकों की रचनाकार पुष्पा राव ने अनुवादक का कार्य भी किया है। गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय ट्रेंट में सम्मिलित होने पर हिंदी कविताओं का दौर प्रारंभ हुआ है।

...शायद उसे नहीं मालूम

बगिया में चहकती थी बुलबुल की तरह,
घर की शान थी रोशनी की तरह
महफ़िल की जान थी मय की तरह।

आज बाग़ है उदास बिना बागबान,
घर भी ख़ामोश और सुनसान
महफ़िलें चुप, सहमी और बेजान।

किसे दोष दें मौत को या ज़िंदगी को
क्या इतने ही दिन लिखा लाई जीने को,
ऐ बेरहम मौत, तुझे आई न दया
इन मासूम बच्चों का दिल तोड़ दिया।

ये आधी रात को थी मौत की दस्तक,
या ज़िंदगी को अलविदा कहने का वक़्त,
मरनेवालों के साथ मरते तो नहीं,
पर इस दर्द से बचते भी नहीं,
आएगी ये दस्तक एक दिन यह पता है।

बहलाते हैं दिल को यह कहकर
कि शायद
उसे नहीं मालूम हमारे घर का पता!

□

ख़त

ख़ुशबुए प्यार भरे
ख़त ये सारे तेरे
जलाऊँ तो जलाऊँ कैसे?
यादें इनमें समाई तेरी-मेरी
भुलाऊँ तो भुलाऊँ कैसे?
इनको सबसे बचाकर रखा
सबकी आँखों से चुराकर रखा।
तेरी अनमोल निशानी
ये ख़त हैं सारे
जिनको दिन-रात लिखा
कभी काग़ज़ पे
कभी दिल पे हमारे लिखा।
घबरा गई
तुमको परेशां करके
चोरी-चोरी बहा दरिया में
इनको आई
मार तुमसे नहीं
खुद से खाई।

□

सुश्री रमा जोशी

रमा जोशी का जन्म एवं स्नातकोत्तर तक की शिक्षा भारत में हुई थी, जहाँ वे १९६८ में यू.के. आने से पूर्व अंग्रेजी भाषा की प्राध्यापिका थीं। समाज शास्त्र में उन्होंने स्नातकोत्तर शिक्षा यू.के. में प्राप्त की थी। वरिष्ठ अध्यापक होने के अलावा उन्होंने अन्य कई क्षेत्रों में भी काम किया है। समाज-सेवा की अनेक परियोजनाओं से जुड़ी रमा जी १९७३ से बर्मिंघम में 'जस्टिस ऑफ पीस' हैं। विद्यार्थी जीवन से ही वे हिंदी में कहानियाँ एवं कविताएँ लिखती रही हैं। गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय में सम्मिलित होने के बाद रमा जी की रचनात्मकता ने एक नया सकारात्मक मोड़ लिया। इनकी रचनाएँ भारत एवं यू.के. की पत्रिकाओं में छपती रहती हैं। रमा जी का पहला कविता-संग्रह 'तुम्हारे लिए तुम्हारे बिना' २००७ में प्रकाशित हुआ।

पूरे-अधूरे सपने

पूछा किसी मित्र ने
उस दिन
हँसी में—
'तुम्हारे सपने पूरे हुए क्या?'
'जीवन सारा सपना ही तो है'
—कहा जल्दी में।

फिर सोचा—
क्या थे मेरे सपने?
याद किए कुछ भूले सपने
कुछ ने भरा रंग जीवन में
कुछ अब भी बचकाने।

मिला जो इतना
उसके सपने देखे थे क्या?
माला सपनों की
मोतियों जैसी
बनी जीवन!

पर जो मोती मिलकर

टूट गए
सपने जो सच थे
फिर बने सपना।

अब बस इतना जानूँ
खो जाएँ जो मिलकर सपने
नहीं मिलते वह दोबारा
हाँ, मित्र–सपने तो साकार हुए—ढेरों।

□

प्रश्न-१

किसी को कोई सबक सिखाना था क्या?
नहीं, कैसे मानूँ
तुम माँ थीं
नन्ही जानों का ऐसा अंत
जान-बूझकर
एक माँ—कैसे कर पाई?

कहीं भीतर
ऐसा भी लगा
हम भी कहीं दोषी हैं...
मनुष्य हैं
इस खाते-पीते समाज के।

आखिर
क्यों हुआ ऐसे?
तुम यह सब थी
एक नारी
एक माँ,
एक युवा।

□

प्रश्न-२

तुम यह सब थीं···
एक नारी
—एक माँ
—एक युवा
एक खाते-पीते देश में
यह क्या किया तुमने?
दृढ़ निश्चय से
दो नन्ही जानों के संग
तेज रेल के आगे
पलक झपकते—तुम!
एक झटके में
जीवन के सागर को
लाँघ गईं
रेल तीनों जानों को लील गई।
छोड़ गईं तुम
ढेरों प्रश्न
क्यों किया ऐसा?
दु:खी थीं क्या?
दु:खी तो होगी न?
रुग्ण थीं क्या?

□

घर में मग्न

अब
रच-बस गई हूँ जीवन में
छोटी-बड़ी खुशियों में मग्न
शुक्रगुजार हूँ
सफर इतना तय हुआ।

आँधी-तूफ़ानों से निकली
देखती हूँ सुबह का ताज़ापन
मौसम की ताज़गी
वह छोटी चिड़िया
जो रोज़ ही
सुबह मेरी खुली खिड़की के पास
चहचहाती है।

यह घर अब
मेरे साथ सोता है
मेरे साथ जागता है,
घर छोड़ने की वेला में
इस घर में रच-बस गई हूँ मैं।

जाना तो है
अब सफ़र कितना बाकी है?
मंज़िल तो तुम हो!
तुम ही हो न!
हाँ...
अब स्वयं बस गई हूँ मैं जीवन में।

□

तुम्हें जल्दी जाना था

घर-बार, रुपया-पैसा
घर-परिवार
तिनका-तिनका जोड़ना
और दौड़, केवल दौड़

देखो बाहर
काम-काम-काम
जी जोड़, तन तोड़
पीछे नहीं रहना

हँसना-हँसाना
रोना-रुलाना
सोना-सुलाना
हाँ, ऐसे ही सब होता है।

सोचो अकेले
ढूँढ़ो एकांत
ईश्वर है (है न?)
अच्छा—शांत मन

चलो–चलते रहो
आराम भी होगा एक दिन···
और बातें–बातें–बातें,
मेरी तुम्हारी,
भरा–भरा तन,
भरा–भरा मन।

तुम गए,
सारा खेल ख़त्म
दौड़ क्या इसलिए थी
कि तुम्हें ज़ल्दी जाना था?
शायद, ज़ल्दी ही जाना था तुम्हें!

□

बिखरा दिन

आज का दिन
बिखरा-बिखरा है
दिन का कोई कोना
हाथ नहीं आया
कुछ भी नहीं है अपनी जगह पर
न सुबह, न दोपहर और न साँझ।
खीझा-खीझा है मन
स्वयं से उदास भी
और···
मौसम तो गीला है ही!
इतना कुछ मिला जीवन में
फिर भी
दीवाना मन
दूर है चैन से
कोई कहता है
नहीं, दिन बिखरा नहीं है
और बिखरा है तो केवल मन!
इसके कोने
समेटने हैं—हमें स्वयं ही
और सुंदर बनाने भी हैं
सुंदर ये सब।

□

सुश्री स्वर्ण तलवाड़

स्वर्ण तलवाड़ का जन्म भारत में हुआ और उन्होंने बी.एड. की डिग्री दिल्ली विश्वविद्यालय से प्राप्त की। यू.के. आने के बाद उन्होंने बर्मिंघम विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर डिग्री भी प्राप्त की। अब वे अध्यापन कार्य से सेवानिवृत्त हैं। विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक संगठनों के उच्च पदों पर रह चुकी स्वर्ण तलवाड़ आजकल भारतीय महिला क्लब की अध्यक्षा हैं। वे बी.बी.सी. टेलीविजन में भी कार्य कर चुकी हैं। स्वांतः सुखाय वे गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय एवं कृति यू.के. के सौजन्य से काव्य-पाठों का आनंद उठाती रही हैं। स्वर्ण जी की रचनाएँ भारत एवं यू.के. की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं एवं संकलनों में प्रकाशित होती रही हैं। वर्ष २००७ में उनका पहला काव्य-संग्रह 'कविता तुम कौन हो?' प्रकाशित हुआ।

गन-कल्चर

एक समय था
जब सरहद पर तैनात
देश के रक्षक सिपाही के कंधे पर
टिकी बंदूक
उसकी आन, बान और शान थी।

एक समय है आज
युवा बन गया है भक्षक
बंदूक बन गई है खिलौना
मानव की हिंसक प्रवृत्तियों के
मनोरंजन का रूप घिनौना।

अमरीका विश्व के सभी देशों से
समृद्ध और शक्तिशाली है
फिर उसके युवाओं का
हृदय क्यों भावनाहीन और खाली है।

गिरोह बनाकर रातों को
सड़कों पर घूमना
हर लेना प्राण
जो भी इनके रास्ते में आए।

प्राण देना और प्राण हरना
पहले रणभूमि के धर्मयुद्ध के
कुछ नियम थे।
किंतु अब
प्राण लेना या प्राण देना
बनकर रह गया है
एक खेल घिनौना।

□

आवाज़

बरसों पहले
पहाड़ की ऊँची चोटी से
तुमने ऊँची
आवाज़ में केवल एक शब्द कहा
जिसकी गूँज
समस्त घाटियों में
वृक्षों, फूलों और पत्तों में समा गई।

वह गूँज
कदाचित्, शांत होकर
पत्थरों में निर्जीव हो गई।
शायद तुमने प्रकृति से
ऐसी ही माँग की थी
जिसे पूरा करने में असमर्थ थी वह।

तुम्हारी माँग, तुम्हारी गूँज
अब
अहिल्या की तरह पत्थर बन चुकी है!

अब या तो स्वयं राम आएँ
या तुम स्वयं राम बनो

तुम्हारी गूँज को
फिर से प्राण मिलेंगे
वह गूँज
जिसने कदाचित् एक नहीं
दो शब्द कहे थे
शांति! शांति!

□

लेना-देना

जीवन के किसी भी मोड़ पर,
धरती के किसी भी छोर पर,
क्या सोच रहा है मानव?
क्या विचार किया है किसी ने?

हर व्यक्ति कुछ पाने की चाह में,
बँधा लालसा और मोह के बाहुपाश में,
भूल गया है
कुछ देने की सभ्यता!
यदि चलता रहा ऐसा ही क्रम,
तो आएगा एक दिन ऐसा भी,
जब पानेवाले होंगे अति आतुर,
और फिर
भीड़ बढ़ेगी, होड़ लगेगी।

फैलेंगी झोलियाँ
बढ़ेंगे असंख्य हाथ
देनेवाला हो जाएगा अदृश्य
खेलेगा इनसे आँख-मिचौली,
करेगा इनका कटु उपहास
रह जाएँगी खाली झोलियाँ
और मलते रह जाएँगे हाथ। □

तिथि

मीठी यादें, कड़वी यादें
विरह की अग्नि, मिलन की ठंडक
बरखा की बूँदें, सावन की रुनझुन
शीतल बयार में महकता तन-मन
वे अमूल्य लम्हे
जिन्हें हम कभी भूल न पाए
हो गए आज वह हमसे पराए
बनकर रह गए
दीवार पर टँगे कैलेंडर की धराहर!

तिथियों पर पेंसिल के गोले खिंचे हैं
गोलों की कैद में
बंदी बनकर जी रही हैं
जीवन की प्यारी अनमोल स्मृतियाँ
देखो तनिक ध्यान से
कदाचित् कुछ कहने को
आतुर हैं ये ख़ामोश तिथियाँ।

□

वृक्षराज

तम चंदन बन के वृक्षराज
मैं हूँ एक रागिनी
आज सुनो मेरी आवाज़
बज उठूँगी बीन-सी
और जग उठेंगे नाग सारे
लिपट जाएँगे वह तुमसे
हर लता से, हर टहनी से
हर फूल से, हर पात से।
चाहती हूँ मैं भी लिपटना
पर नागिन न बन सकूँगी।

छोड़ो हठ वृक्षराज!
खोलो चक्षु, खोलो कर्ण
देखो, सुनो क्या कह रही है रागिनी?
हो जाओ मदमस्त
और झूमो रागिनी के राग से
गीत से, संगीत से
धुन से, लय से

समझो
दोहों को, छंदों को, शब्दों को
शब्दों के अर्थ को
किस धुन में क्या कह रही है
रागिनी ?

□

सुश्री अरुण सब्बरवाल

अरुण सब्बरवाल का जन्म भारत में हुआ था और स्नातकोत्तर शिक्षा दिल्ली विश्वविद्यालय से प्राप्त करने के साथ-साथ अरुण ने भारतीय शास्त्रीय संगीत में विशारद भी हासिल की। यू.के. से पी.जी.सी.ई. प्राप्त कर वे कई वर्षों तक अध्यापन करने के बाद, अब सेवानिवृत्त हैं। यू.के. की कई संगीत और कला की संस्थाओं से जुड़ी अरुण पिछले पंद्रह वर्षों से हिंदी में कविताएँ लिखती रही हैं। अरुण की कुछ कविताएँ भारत में छप चुकी हैं। अरुण एक सफल चित्रकार भी हैं।

निराकार प्रियतम

ऐ निराकार प्रियतम!
सदियों से तुम्हारा एहसास
और अपना यह विश्वास
कि तुम, सिर्फ़ तुम
यहीं कहीं
प्यार उड़ेलते
निगहवानी करते
मँडरा रहे हो मेरे चारों ओर।

तुम निराकार, वह साकार
तुम कल, वह आज
तुम भूतकाल, वह वर्तमान
तुम थे
वह है!
तो सुनो!
आज मैं
जीवन-पथ में
बढ़ना चाहती हूँ
वर्तमान के संग
इसीलिए प्रिय!

आज से तुम्हें मैं
अपने बंधन से
करती हूँ मुक्त
और मैं भी
तुम्हारे बंधन से
चाहती हूँ मुक्ति
ताकि ज़िंदगी की
इक नई दिशा में
संपूर्णता से
बढ़ सकूँ आगे
और आगे···

□

आमंत्रण

बहुत छला है अब तक तुमने
कब आओगे मेरे प्रियतम
बैठी हूँ टकटकी लगाए
पल–पल, पल–पल, क्षण–क्षण, क्षण–क्षण
तन मन होगा अर्पित तुम पर
होगा मेरा आत्मसमर्पण
हृदय द्वार खुला है मेरा
अंतिम पल तक है यही निमंत्रण।

☐

प्रिय तुम्हारी आँखों में

प्रिय तुम्हारी आँखों में
देखा मैंने
इक टूटा सपना।
प्रिय तुम्हारी आँखों में
देखी मैंने
इक झड़ी बरसात की।
प्रिय तुम्हारी आँखों में
देखा मैंने इक रोता बादल।
प्रिय तुम्हारी आँखों में
देखी मैंने इक मौन व्यथा।
प्रिय तुम्हारी आँखों में
देखा मैंने थर्राया आकाश,
मैंने घनघोर अँधेरा
बेचैन लहरियाँ!
पतझड़-सावन
दोनों ही
देखी मैंने इक मौन व्यथा
प्रिय तुम्हारी आँखों में।

□

आधी रात

आधी रात
दूसरे पहर
इक टीस सी उठी मन में
शायद तुमने आवाज़ दी होगी
एकाएक
मीठी–मीठी
यादों की कशिश ने
नींद से जगा डाला
निरंतर तुम्हारी यादों की चादर
उधेड़ती–बुनती
बुनती–उधेड़ती
और न जाने कब यह चादर ओढ़े
इक सौंधी सी
तुम्हारी याद और मुसकान लिये
न जाने कब
नींद की गोद में सो गई!
न जाने कब
न जाने कब
सो गई मैं!

□

प्रिये

बहुत दिनों से
तुमसे बात नहीं हो पाई,
शायद!
शायद अनजाने में
मिलना भूल गए हो तुम भी!
कि
कितना कुछ कहना था तुमसे
कितना कुछ सुनना था तुमसे
सोचा!
ख़त में ही उड़ेल दूँ,
सारा बोझ दुःखी इस मन का

पत्र लिखा
तो, याद आ गया
पता तुम्हारा नहीं है मुझ पर
बोलो प्रिये!
अब पतिया लिखकर
भेजूँ कहाँ?
कहाँ पर भेजूँ?

□

सुश्री जय वर्मा

जय वर्मा का जन्म जिवाना (मेरठ, उ.प्र.) में हुआ था, जहाँ रघुनाथ कन्या विद्यालय से बी.ए. की उच्च शिक्षा प्राप्त कर आर्ट एवं चित्रकला का अध्ययन किया। आप तीन दशक से यू.के. में रहते हुए विगत पंद्रह वर्षों तक हिंदी शिक्षण का काम किया। यू.के. में भारतीय संस्कृति एवं कविता को बढ़ाने में आप वर्षों से सक्रिय रही हैं। गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय ट्रेंट की आप संस्थापक अध्यक्ष हैं। आपकी रचनाएँ 'पुरवाई' एवं भारत की अन्य पत्रिकाओं में बराबर प्रकाशित होती रहती हैं।

ख़त

तेरा ख़त मिलने का इंतज़ार था मुझे,
आज आएगा ख़त ज़रूर यकीन था मुझे।

बार-बार तेरा ख़त पढ़कर मुझे लगा,
खड़े हो तुम मेरे क़रीब।

तेरे पैग़ाम को मैंने तसव्वुर माना,
ज़िंदगी के जीने का सहारा जाना।

तेरे ख़त मिलने से मन को सुकून आया,
आसमाँ को छू लेने का ख़याल आया।

तेरा लिखा हुआ हर हर्फ अज़ीज है मुझे,
पढ़ती हूँ बार-बार जैसे मुकद्दर हो अपना।

फेंक सकती नहीं तेरा लिखा हुआ ख़त,
दिल के सब अफ़साने हैं इसमें बंद।

मैं इस ख़त को अब कहाँ छुपाऊँ,
दूसरों की नज़र से कैसे बचाऊँ।

जब तुम हो दूर आफताब नज़र न आए,
पास हो तब वीरानों में भी बहार आ जाए।

साथ है तुम्हारा तो मंज़िल की मुझे तलाश नहीं,
चारों तरफ़ है चाँदनी तारों की मुझे ख़्वाइश नहीं।

बेताबी से मेरे ख़त का इंतज़ार करनेवाले,
जवाबी उम्मीद की नज़र बिछानेवाले।

मेरा ये पैग़ाम जल्द ही तुम तक पहुँचे,
कि अबकी बार ख़्वाब में नहीं, रूबरू मिलो!

□

आशा

फूलों को खिलने से न रोक पाया कोई,
महक जाने दो चमन को मेरे भी यूँ ही।

फैल जाने दो सुरभि हवा में कहीं,
सुरमई ये गीत बन जाएँगे कभी।

इंद्रधनुष भी अपनी खींचेगा कमान,
सरसराते ये रंग बिखर जाएँगे कहीं।

धरा भी अपना करके शृंगार,
रेशमी चादर फैलाएगी अभी।

जीवन है एक छोटी सी राह,
चलकर क्षितिज एक हाथ थाम लेना कहीं।

सहयात्री हैं हम एक पथ के,
गीत भी तुम्हीं और मीत भी तुम्हीं।

□

दूरी क्यों

जिस दिन मैं तुमसे रूठी
तुमने न मुझे पुकारा
और न ही मनाया।

तुमने सोचा होगा
कि मुझे न था इंतजार,
मगर मैं,
प्रतीक्षा करती रही,
तुम्हारे क़दमों की आहट सुनने की!
वो आहट जो कि धीरे-धीरे,
दूर होती चली गई।

अगर कंधे पर
तुम्हारा स्पर्श महसूस करती,
तो शायद
आज ये दूरी न होती,
और हम अजनबी न होते एक-दूसरे से
और दूर न बैठे होते,
तुम वहाँ,
हम यहाँ!

क्यों एक बात पूछूँ
जिस दिन मैं तुमसे रूठी थी,
तुमने न मुझे पुकारा
और न ही मनाया,
क्यों किया ऐसा ?

मुक्त

इंसान मुक्त नहीं है
प्रकृति के नियमों से,
जीवन के संघर्ष से,
कर्मों के फल से,
समाज के रिवाज़ों से,
रिश्तों के प्रभाव से,
बचपन की यादों से,
प्यार के बंधन से,
जीवन-मृत्यु के चक्र से
इंसान मुक्त नहीं है।

□

नारी

आँखों में पीड़ा,
भय और शर्म को छिपाती हुई
शरमाती हुई,
बेबस साँसों की आवाज़ को
सीने में दबाए हुए,
उसे नहीं है ज्ञात
कि क्या है कारण परेशानी का,
बीमारी का,
या उसके परिवार की स्थिति का,
या उसके बच्चे के स्वभाव का
जिसके रोने की आवाज़ से ही,
वह हो जाती है बेचैन,
वह अपनी बीमारी भूलकर,
बच्चे को सहलाती है चुप करने के लिए,
और ख़ुश करने के लिए भी,
देती है एक मुसकराहट,
ख़ूब सारा प्यार,
फिर भूल जाती है,
कि वह डॉक्टर के यहाँ
स्वयं को दिखाने आई थी,

मगर बच्चे की तरफ़ देखकर
करुणा भरी आवाज़ में संक्षेप में कहती है
एक बात—
'डॉक्टर! मैं तो ठीक हूँ
बस आप मेरे बच्चे का कर दो इलाज़।'

□

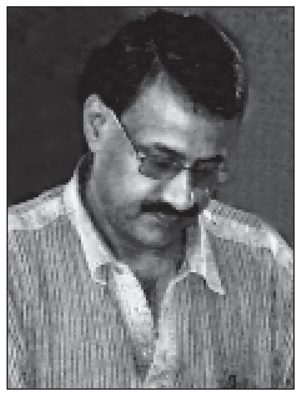

डॉ. कृष्ण कन्हैया

कृष्ण कन्हैया का जन्म पटना (बिहार) में हुआ था, जहाँ से उन्होंने मेडिकल डिग्री प्राप्त की थी। कृष्ण कन्हैया को कविता आदि के साथ-साथ संगीत का शौक बचपन से ही था। भारत एवं यू.के. में रेडियो पर कविताओं का प्रसारण हो चुका है। इनकी कविताएँ भारत एवं यू.के. में छपती रहती हैं। २००९ में इनका पहला काव्य संग्रह 'किताब ज़िंदगी की' प्रकाशित हुआ था और दूसरा संग्रह प्रकाशनाधीन है।

फितरत

फितरत!
तेरी शिद्दत ऐसी हो
कि ग़म में भी हमें चूर न करे
खुशियाँ मजबूर न करें
अहं के तराजू पर
सुख-दुःख बराबर तौलें,
बातें तौलें
तभी बोलें
रिश्ते-नातों को मान देता हो
सच्चे दोस्तों पर जान देता हो
वो बातें कभी न भाएँ
जो ख़ुद पर ही, रास न आएँ
बातें अचूक हों
चाहे क्यों न दो-टूक हों
अपमान और एहसान की परख हो
बराबरी पर बराबर की नज़र हो
दोनों को अपने पास रखना बेमानी है
उचित है
जब सूद समेत औरों को लौटानी है।

□

हवाएँ

हवा!
तुम्हें भी हक़ है
प्रतिकार करने
और
अपनी हस्ती पर
अहंकार करते हुए
महकने, थिरकने, काँपने और साँसों में बसने का।
तुम्हारा सिर्फ़ यह मक़सद नहीं
या फिर
रंगहीन, स्वादहीन संज्ञाएँ तुम्हारी हद नहीं
पंचतत्त्वों में तुम्हारा सार है
तुम्हारा वजूद ही तुम्हारा आधार है
कड़कड़ाती ठंड में
आग सुलगाकर
तुम्हें जलाकर
तुम्हारा इस्तेमाल होता है
और चिराग़ बुझा दें
तो एतराज होता है
आँधी, तूफान, चक्रवात, बवंडर
ये सब तुम्हारे रूप हैं

माना कुरूप हैं ये,
पर प्राकृतिक कुरीतियों को
जीतना भी तो नीति है।
तुम यदि स्थायी विजय चाहते हो,
तो फिजाओं में माहौल पैदा करो
माहौल
जहाँ हवाएँ संकल्प के साथ डोलें
कानों में हौले-हौले बोलें
साँसों में उनकी महक
हमेशा बरकरार रहे
और हवाओं से
संबंध के बूते
प्यार रहे!

□

संबंध

संबंध की पतंग की उड़ान
ऊँची हो
इसलिए ज़रूरी है
कि व्यक्तित्व का आकार सही हो
उसे समन्वय की सुई से
सही दूरियों पर छेदा गया हो
संवेदनाई माँझा
धागों पर सही और बारीक लगे हों
और जज़्बाती हवाओं की गति
मध्यम-मध्यम हो
जिसमें ऊँची उड़ाई जाए
प्रगाढ़ संबंध की पतंग
और दुश्मनी की पतंग
बामौका काटी जाए
टूटे हुए धागों में जोड़ लगाकर
यानी बाँधकर गाँठ
अवांछित माहौल में उसे उड़ाकर
भरोसेमंदी से जुड़ी पतंग-प्रतियोगिता
हरगिज़ जीती नहीं जा सकती!

□

वस्त्र

वस्त्र!
तुम सिर्फ़ वस्तु मात्र नहीं
क्या यह एक मौलिक बात नहीं?
वह एक आवरण है
जो समाज की नंगी आँखों
और शरीर की गरिमा के बीच
एक दीवार सा खड़ा है
जिसकी अहमियत
बढ़कर होनी चाहिए
भोजन और आवास से
क्योंकि
भूखों की मौत में दिन
बेघरों की मौत में
महीने लग सकते हैं
पर शर्मसार मौत में
क्षण से भी
कम वक़्त लगता है

अगर मरनेवाले में
ग़ैरत हो!
और
आचरण जिसके लिए
धन और बदन से
ऊपर हो!

□

डाँट प्यार की

मुझे बुरा लगता था
बाबूजी का
बात-बात पर टोकना
हर बात पर टोकना
ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे से
मेरी बुराइयाँ बोलना
मैं चुप रहता था
भय से कुछ न कहता था
माँ से सिर्फ़ शिकायत करता था
बनी-बनाई अपनी ख़ूबियाँ गढ़ता था
माँ हँस देती थी
कलेजे में साट लेती थी
गाल चूमकर, सिर पकड़कर
बलैया लेती थी
बाबूजी की दहशत भरी डाँट के बाद
माँ का वह प्यार
बहुत अच्छा लगता था
और बाबूजी की डाँट में
माँ के इसी प्यार के बूते सहता था
वक़्त बदल गया

समय टल गया
रिश्ते में मैं
'बड़ा' बन गया
अब कहता हूँ अपनी बातें
अपनी मनमानी करता हूँ
बड़ा हूँ यह भान हो गया
घर में मेरा मान बढ़ गया
लगता है मैं छोटा हूँ
जाने क्यों अब भी रोता हूँ
खोज रहा हूँ वही समय
माँ का प्यार, बाप का भय
खट्टी-मीठी बाल-बनावट
डाँट-प्यार की सही मिलावट
आज अगर जो कुछ भी हूँ
किया हुआ उनका ही हूँ
श्रेय उन्हीं को सच, जाता है
मन उनके ही गुण गाता है!

□

बेल

बेल की लतें
सामीप्य की भूखी हैं
चाहे रूखी–सूखी हैं
तने से हरी–भरी हैं
धरती के सीने में गड़ी हैं
पर नज़दीक की शाखाओं को
चूम–चूमकर मचलती हैं
और उनके साथ लिपट–चिपटकर
ऊपर की ओर चलती हैं
पर उसके दामन पर
चिपटनेवाले मन पर
संकीर्ण छवि की सच्चाई
दिख नहीं पाती है
क्योंकि बग़ैर सहारे के
ये छुईमुई काया
आसमान की ऊँचाई
चढ़ नहीं पाती है
चाहे मौक़ापरस्ती का तोहमत लगाओ
या उलाहना के बड़े शब्द सुनाओ
इसकी फितरत सट जाने की है
औरों के सिर पर
पाँव रखकर
बढ़ जाने की है। □

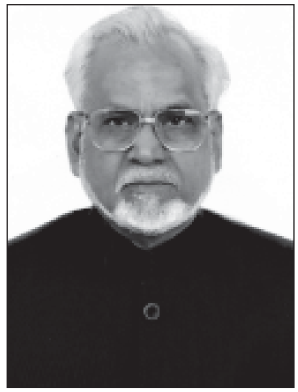

डॉ. कृष्ण कुमार

कृष्ण कुमार का जन्म एवं कुछ शिक्षा भारत में हुई। स्नातकोत्तर अध्ययन यू.के. में भी हुआ। ये १९५४ से हिंदी में कविताएँ लिखते रहे हैं। भाषायीय समन्वय को ध्यान में रखते हुए १९९५ में गीतांजलि बहुभाषीय साहित्यिक समुदाय की बर्मिंघम में स्थापना की। कृष्ण कुमार के तीन कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इन्होंने चार ऐसे बहुभाषी कविताओं के संग्रह संपादित भी किए हैं, जिनमें कविताओं के अनुवाद अंग्रेजी भाषा में भी दिए गए हैं। चारों संग्रहों में गीतांजलि समुदाय के सदस्यों की रचनाएँ ही संगृहीत हैं। कृष्ण कुमार ने यू.के. में भारतीय संस्कृति एवं भाषाओं के प्रचार-प्रसार के लिए कुछ अद्‌भुत कार्यक्रमों को अंजाम दिया है। वे भारत एवं यू.के. में अनेक सम्मानों से अलंकृत किए जा चुके हैं, जैसे—उ.प्र. हिंदी संस्थान द्वारा वर्ष २००४ के लिए 'प्रवासी भारतीय हिंदी-भूषण सम्मान'। २००५ में भारतीयों की सार्वभौमिक अखंडता एवं एकता के लिए एक अंतरराष्ट्रीय बहुभाषीय संगोष्ठी का तथा २००७ में २३वें अंतरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन का आयोजन बर्मिंघम में किया।

क्यों ढूँढ़ते हो

जो नहीं मिलना
उसे क्यों ढूँढ़ते हो?
हाथ पर रखकर उजाला
क्यों तिमिर में घूमते हो?
तुम न मानोगे
मगर यह सत्य है
सूर, तुलसी औ'
कबीरा कह गए
धर्म के सिद्धांत सारे
ज़िंदगी औ' मौत के
रिश्ते निराले
आचरण का ले सहारा
शब्द में वे रख गए।

रो कबीरा उड़ चला
लोग पर लड़ते रहे
धर्म की देकर दुहाई
स्वार्थ को भजते रहे।
राम-दशरथ
कृष्ण-दाऊ

इस धरा से चल दिए
कब गया
गोकुल-अयोध्या
साथ उनके।
गर समझ यह
मर्म जीवन का
कहीं आ जाए तो फिर
ज़िंदगी के भ्रम सभी
मिट जाएँगे
अज्ञानता के सघन बादल
भी स्वत: छँट जाएँगे।

□

कर्म का उपहार

ज़िंदगी—
सुंदर-सुखद है
कर्म का उपहार है
मौत—
इसके अंत का ही
शांतिमय संसार है।

बीच दोनों के गुज़रती
मुख़्तसर-सी जीवनी को
मिल सबों ने
कर दिया बेप्यार है
ज़िंदगी—
सुंदर-सुखद है
कर्म का उपहार है।
मौत इसके अंत का ही
शांतिमय संसार है!

अब अपेक्षा लोभ का जामा
पहनकर घूमती है
कम करें अपनी ज़रूरत

प्यार पाने का यही तो सार है।

ज़िंदगी—
सुंदर-सुखद है
कर्म का उपहार है।
मौत इसके अंत का ही
शांतिमय संसार है!

□

कल काल तो पछताएगा

यह विचारों की सदी है,
अस्त्र–शस्त्रों की नहीं!
भावनाओं की सदी है,
कल्पनाओं की नहीं!

हो चुका
काफी नियंत्रण विश्व का
हो चुका
तन का नियंत्रण भी अधिक!

संतुलन मन का
यहाँ अब चाहिए
डूबते को
एक तिनका चाहिए
हर तरफ़ दूषित हवाएँ चल रही हैं,
ज़िंदगी की दास्ताँ जो कह रही हैं।
दूर करने को तिमिर–संसार से

क्रांति जग में
सोच की
लानी पड़ेगी
अन्यथा
कल काल तो पछताएगा।

□

कैसे जगाऊँ

वह ज़मीं पर
चल रहा था
दिख रहा था
पंख में भर ऊर्जा
आकाश में उड़ने लगा
दूर तक देता रहा सबको दिखाई
किंतु वह फिर
शीघ्र ही
हर आँख से ओझल हुआ।

दृष्टि की होती विवशता
यह नियम विज्ञान का है
चक्षु अंत: देखता,
वह व्योम में लेकिन टिका है
हो रहा जो विश्व में
सब देखते हैं।

किंतु क्यों?
रुककर नहीं वह सोचते हैं।
मैं इसे किस नाम से
बोलो, पुकारूँ
चेतना जो सो चुकी
कैसे जगाऊँ?

□

चेहरा तेरा

देखकर चेहरा तुम्हारा
एहसास यह होने लगा
तुम हमारी साँस की
कंपन नहीं
तुम ऊर्जा हो
तुम हमारे देव की मूरति नहीं
तुम साधना हो
तुम हमारे गीत के
अक्षर नहीं
तुम चेतना हो।

हर तरफ मसजिद, शिवाले
और गिरजाघर, मगर
बंद सबके द्वार हैं
इनसानियत के वास्ते
आ उन्हें तुम
कुछ सिखाओ,
ज्ञान की बातें बताओ

इस बदलते विश्व को
तुम 'धर्मरथ' पर
आ चढ़ाओ,
प्यार की भाषा सिखाकर
शांति का दीपक जलाओ,
बढ़ रहे आतंक से इस
आ स्वयं को अब बचाओ।

□

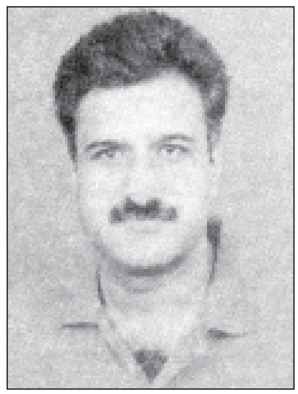

श्री सर्वेश सैनी

सर्वेश सैनी का जन्म पंजाब में हुआ था, जहाँ उन्होंने स्नातकोत्तर डिग्रियाँ प्राप्त करने के बाद १९८५ बैच की भारतीय लोक सेवा में चयनित हुए। प्रतिष्ठित चित्रकार सर्वेश सैनी के चित्रों की देश-विदेश में प्रदर्शनियाँ लग चुकी हैं। भारत सरकार की ओर से २००२ में बर्मिंघम आने पर उन्होंने गीतांजलि बहुभाषीय में भागीदारी प्रारंभ की। सर्वेश अधिकतर हिंदुस्तानी भाषा में कविताएँ लिखते हैं, यद्यपि कभी-कभी अंग्रेजी भाषा में भी कुछ लिख लेते हैं। सर्वेश की कविताएँ भारत एवं यू.के. की पत्रिकाओं में छप चुकी हैं।

इक अहसास

धूप ओढ़े बैठे दरख़्तों के साये,
परिंदे यहाँ छटपटाने लगे हैं।
उजालों की बदली नीयत है ऐसी,
दबे पाँव आकर डराने लगे हैं।

उजालों से बच के चले तो थे लेकिन,
चरागों ने चुपके से थामा था दामन।

हदें सब चरागाँ तय तो थीं लेकिन,
शरारों से ख़ुद को बचाने लगे हैं।
चराग़े-मुक्कदस जो घर थे सजाए,
वहीं आशियाँ को जलाने लगे हैं।

इस दश्त की इक अजब दास्ताँ है,
हर डाल बागी जी आतिशपशाँ है।

जड़ों में है पाले लाखों ही अजगर,
थके पाँव काबू में आने लगे हैं।
सरपरस्ती के दम से खड़े थे जो अब तक,
वो खुद ही के बीजों को खाने लगे हैं।

चातक की चाहत इक बूँद पानी,
धरा की धरोहर धरी ज़िंदगानी।

पंखों में भर के अंगार हर शब,
ये मेघा ही सबको मिटाने लगे हैं।
तपिश ले के आया है बारिश का पानी,
जलजले अब तालाबों में आने लगे हैं।

इन दस्त-ए-मुबारिक की नीयत ही खोटी,
इक हाथ बारूद है, इक हाथ रोटी।
ले हाथों में आतिश जो घर थे जलाए,
बे आब उनको बचाने लगे हैं,
झुलसी-सी रूह के भरें जख़्म कैसे,
जो ख़ूँ से ये मरहम बनाने लगे हैं।

कौस-ए-कज़ा की ये रँगीं रोशनाई,
करम है ये क़ुदरत ज़मीं पे बिछाई।

सारा ये आलम सभी के लिए है,
सभी रंग कितने सुहाने लगे हैं,
ये संसार सालम सभी के लिए है,
बनने में कितने जमाने लगे हैं।

□

गीत

मुट्ठी भर आकाश को थाम,
काहे इतराए तू यार?
देख परिंदे पंख पसार,
देख उधर सब है तैयार।
मुक्त हवा आजाद फिजाँ,
नभ सारे पे है इख़्तियार॥

इन परवाज़ों की जीत लिखूँ,
सोचा है इक गीत लिखूँ।

चीर धरा का वक्ष अपार,
टुकड़ों में बाँटा संसार,
आबोहवा औ' मंद बयार,
बँटती कब बाँटे से यार,
खोल के मुट्ठी जरा निहार,
घोर अँधेरा और है हार।

कैसे कह इसे जीत लिखूँ,
सोचा है इक गीत लिखूँ।

क़तरा-क़तरा जुड़कर बनती,
एक शोख़ पानी की धार,

काठ जुड़ें तो बन जाए कश्ती,
बैठ सभी तब उतरें पार,
ऐसी तू इक बन जा कश्ती,
देख कोई बनता पतवार।

इस जग में ऐसी प्रीत लिखूँ,
सोचा है इक गीत लिखूँ।

सूर्य नमन को इक तैयार,
उसको सज़दे से है प्यार।

दूजा जाए चारों धाम,
पाक अजान माटी के राम,
सज़दों का है एक ही काम,
इक-सी पूजा इक-सा नाम।

वंदन की ये रीत लिखूँ,
सोचा है इक गीत लिखूँ।

बिखरे सुर खलिहान चौबारे,
बीन लिये क़ुदरत ने सारे,
सुर की इस लय पर ही चलते,
आबोहवा चंदा और तारे,
लहरों के चंचल तन थिरके,
सुर धड़कन ये तुझे पुकारे।

इस साँझा सा संगीत लिखूँ,
सोचा है इस गीत लिखूँ।

□

दर्द

उसके दर्द को देखा है मैंने।

इक बेमानी ज़िंदगी की शाम का सन्नाटा,
बेबस सा मुंतज़र इक स्याह शब का,
है तस्सवुर जिसकी सुबह का,
नहीं नसीब इस तन्हा ज़िंदगी का।

बड़ी पेचीदगी से तराशी हैं पेशानी पे सलवटें,
दर्द पोशीदा सा इनकी तहों में छुपाया है वक़्त ने।

उसके दर्द को देखा है मैंने।

सूखे सागर के तले में हसरतों की अस्थियाँ,
दीद क्या है दर्द का बस आईना,
हर अक्स की शनाख़्त गुज़री नागवार,
अनजाने ख़ुद से ही तो हुआ सामना।

आँखों की आरसी की चटख देखी न किसी ने,
अपनों के ही तो बुतों को तुड़ाया है वक़्त ने।

उसके दर्द को देखा है मैंने।

दर्द की तासीर से नावाक़िफ़ ये हाथ,
सिर्फ़ छू के ही दर्द टटोला लिया करते हैं,
सर्द पोरों की छुअन की चुभन,
सबब तो है दर्द की इंतहाँ का।

थाम जिस अंगुली को पाँवों को थी मिली राह,
उसी अंगुली को इन हाथों से छुड़ाया है वक़्त ने।

उसके दर्द को देखा है मैंने।

शूल-सी चुभे है बेरुख-सी हर नज़र,
लाचारी के ज़ख़्म रिसते हैं,
कहाँ है दम कि बनें मरहम,
आब-ए-रवाँ पर ही तो लिखे ये रिश्ते हैं।

जलजला कोई उठ न पार इस ठहरे समंदर में,
तभी तो इस कलेजे को है पत्थर से दबाया वक़्त ने।

उसके दर्द को देखा है मैंने।

□

सुश्री कल्पना गवरे

कल्पना गवरे का जन्म भिलाई (म.प्र.) में हुआ था, जहाँ उन्होंने प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत, रविशंकर विश्वविद्यालय (रायपुर, छ.ग.) से बी.एस-सी. की डिग्री प्राप्त की। कई वर्षों तक कल्पना ने अध्यापन का काम करते हुए अन्य कई सामाजिक कार्य भी किए। कल्पना को अनेक सम्मानों से अलंकृत किया जा चुका है। मूल मराठी भाषा की रचनाकार होते हुए भी कल्पना हिंदी में भी सशक्त काव्य रचनाएँ करती हैं। कल्पना का मराठी भाषा में पहला काव्य-संकलन 'भावना' २००५ में प्रकाशित हुआ था।

तुम तो मेहमान हो

चिड़िया करे पुकार, ये झील है मेरा प्यार,
तुम तो मेहमान हो!

जब से है ये धरती,
और ये प्यारे बादल
तब से ये पत्थर
दीवाने हैं पागल,
ये दीवानापन ही अपना है उपहार।
तुम तो मेहमान हो!!

ये धीमी सी लहरें,
कहती हैं फूलों से,
तुम होना ना मगरूर
देखकर ख़ुद को यूँ मुझसे
इस देख-दिखाई में, हो जाए ना इकरार।
तुम तो मेहमान हो!!

हम चिड़ियों की दुनिया
बसी है झीलों में
जैसे कोई दुल्हन

दूल्हे की बाँहों में
घूँघट हमने खोले आई तभी बहार।
तुम तो मेहमान हो!!

ये सूरज का प्रतिबिंब,
पड़ा है तुम पर जो
जो तुम ख़ुश होते हो
ख़ुश हैं हम सदियों से
ये सदियों का बंधन अपने जीवन का त्योहार।
तुम तो मेहमान हो!!

□

गीत

ज़िंदगी दो दिन का है मेला¨

किसी ने किसी का दिल है तोड़ा,
किसी ने किसी का पल है जोड़ा,
जोड-तोड़ का कैसा है खेल ये खेला।
ज़िंदगी दो दिन का है मेला॥

लाख जतन कर बंधन बाँधा,
ना जाने कब कौन दे काँधा,
बाँध-बाँधकर जिया रे जीवन-रेला।
ज़िंदगी दो दिन का है मेला॥

आज है मेरा, कल है किसी का,
जिसका जितना, उतना उसी का,
द्वार खुदा के फिर क्यों झोला फैला?
ज़िंदगी दो दिन का है मेला॥

मिट-मिट जाऊँ, अपनों पर मैं,
घुट-घुट रोऊँ, जख़्मों पर मैं,
फूल से मन में दर्द ही रहा अकेला।

ज़िंदगी दो दिन का है मेला॥

आज हँसूँ मैं, कल फिर रो दूँ,
जिस पे हँस दूँ, उस पे मैं तड़पूँ,
रोकर हँसना, हँसकर रोना यही झमेला।
ज़िंदगी दो दिन का है मेला॥

हम है माटी इस धरती के,
दो दिन महमाँ, इस बस्ती के,
जो भी पाया दु:ख-सुख उसको झेला।
ज़िंदगी दो दिन का है मेला॥

□

एक आवाज़

एक आवाज़ दिल की, दिलासा देती हुई,
अनोखा-सा प्यार लिये, समा जाती है जेहन में,
उस दिलासे पर, अंदर की आवाज़
झूमती हुई नज़ारों सी, छा जाती है काग़ज़ पर।

एक आवाज़ बहुत मुलायम
डर है कि कैसे सँभालें?
कहीं जेहन में उतरते-उतरते,
पिघल न जाए।
पिघलते मोम पर, कहीं और की आवाज़,
धँसकर न रह जाए।
मोम ऐसे ही बनी रहे,
मुलायमता हावी रहे आवाज़ पर,
हमेशा के लिए।

एक आवाज़ दिल पर, ग़मों के साये ओढ़े हुए
बोझ उठाए चली आती है,
हमेशा के लिए जेद्दो-जेहन में,
एक अधूरी प्यास है आवाज़ के एक कोने में।

□

हर साँस में फूलों की ताज़गी

इतनी ज़िंदादिल है मेरी हर रात,
कि आज तक सिरहाने का तकिया सोया ही नहीं,
मेरी दीवार सजी की सजी है आज तक,
एक भी खरोंच उस पर आई नहीं।

अब तक नई-नवेली दुल्हन मेरी हर घड़ी,
जिसने राह कभी किसी की देखी नहीं,
हर तमन्ना मेरी साथिन है, आज इस पल तक,
जिस पर कभी दस्तक किसी ने दी ही नहीं।

मेरी हर साँस में फूलों की ताज़गी पहली रात-सी,
प्यार की अँगड़ाइयाँ अनगिनत लेकर
सभी आहों ने दम तोड़ा चादर पर
मगर उस पर सिलवटें पड़ी ही नहीं।

झरोखों ने कई बार पूछा मुझसे,
कब उड़ोगे बोलो अब कि तब?
बहुत कर चुके तुम प्यार,
क़दर किसी ने की कि नहीं?

□

तुमसे मिलकर

तनहा तो पहले भी थे,
तनहा और हो गए,
तुमसे मिलकर।
महक पहले भी थी, फूलों में बरकरार,
बंद कली में,
तनहा महक
जाना, तुमसे मिलकर।
इंतज़ार किस-किसका न किया,
उम्र भर हमने,
इंतज़ार और भी है इंतज़ार
तुमसे मिलकर।
आवाज़ दी है, तुमने दिल को,
सूनी हो गईं कितनी राहें,
तुमसे मिलकर।
रूठना-मनाना सब था दूर कोसों
मनाए कैसे, रूठे हम
तुमसे मिलकर।
हर मज़बूरी को तुमने समझा॥

□□□